कल्याण

वर्ष ३५

अङ्क ८

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।।

संस्करण—१,३३,००० (एक लाख तैंतीस हजार)

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद २०१८, अगस्त १९६१

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–संधिदूत–श्रीकृष्ण [कविता] ...	१०८५
२–कल्याण ('शिव') ...	१०८६
३–पथिक (श्रीसीतारामदास ॐकारनाथजी महाराज) ...	१०८७
४–ज्योतिष्पथ [एक तरुण साधककी डायरीसे] ...	१०८८
५–अनन्य भक्ति-साधनका स्वरूप (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ...	१०८९
६–मैं सदा श्रीराधामाधवको दिव्य लीला करते देख रहा हूँ [कविता] ...	१०९२
७–भवतरणोपाय (श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज) ...	१०९३
८–कस्मै देवाय हविषा विधेम (श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण', एम्० ए०) ...	१०९८
९–मधुर ...	११०२
१०–एक सच्चिदानन्दमें ही मेरा नित्य निवास हो गया [कविता] ...	११०३
११–तामस त्याग [कहानी] (श्री'चक्र')	११०४
१२–परिपूर्णता (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)	११०७
१३–उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव) ...	११०९
१४–आठवाँ आश्चर्य (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ...	१११३
१५–कैलास-मानसरोवरमें सिद्ध योगी महात्मा (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ...	१११४
१६–कर्तव्य-पालन या मूर्खता-प्रदर्शन ? (श्री-श्रीचन्दजी दोनेरिया) ...	१११७
१७–ब्रह्म [कविता] (श्रीआर० एमरसनकी रचनाका अनुवाद, अनु०—श्रीविजय निर्बाध) ...	१११८
१८–गीत [कविता] (डा० हरवंशरायजी 'बच्चन' एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	१११९
१९–वैज्ञानिक संजीवनी (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) ...	११२०
२०–सौराष्ट्रकी प्रसिद्ध गीर जातिकी गायोंका अमेरिकाके लिये निर्यात ...	११२६
२१–चिन्तन-कण (श्रीबालकृष्ण बलदुवा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०) ...	११२७
२२–प्राचीन वैदिक सभ्यता बनाम भारतमें आर्य-अभियान (श्रीनीरजाकान्त चौधरी देवशर्मा) ...	११२८
२३–प्रभुकी कृपासे मैं सर्वत्र सबमें केवल प्रभुको ही देख रहा हूँ [कविता] ...	११३३
२४–कर्मठता (मूल लेखक—प्रा० श्रीसावलापुरकर महोदय, भावानुवादक—प्रा० श्रीगोपालजी गुप्त एम्० ए०, काव्यतीर्थ)	११३४
२५–अपने आपके साथ दुर्व्यवहार मत कीजिये (श्रीचूड़ामन मोतीलालजी मुन्शी)	११३९
२६–पढ़ो, समझो और करो ...	११४२
२७–समाधान [कविता] (श्रीबालकिशनजी गर्ग) ...	११४८

चित्र-सूची

१–श्रीराधा-माधव	(रेखाचित्र)	...	मुखपृष्ठ
२–सन्धि-दूत—श्रीकृष्ण	(तिरंगा)	...	१०८५

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु०१०.००
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय ।।
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ।।
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ।।

साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५६
(१० पैंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

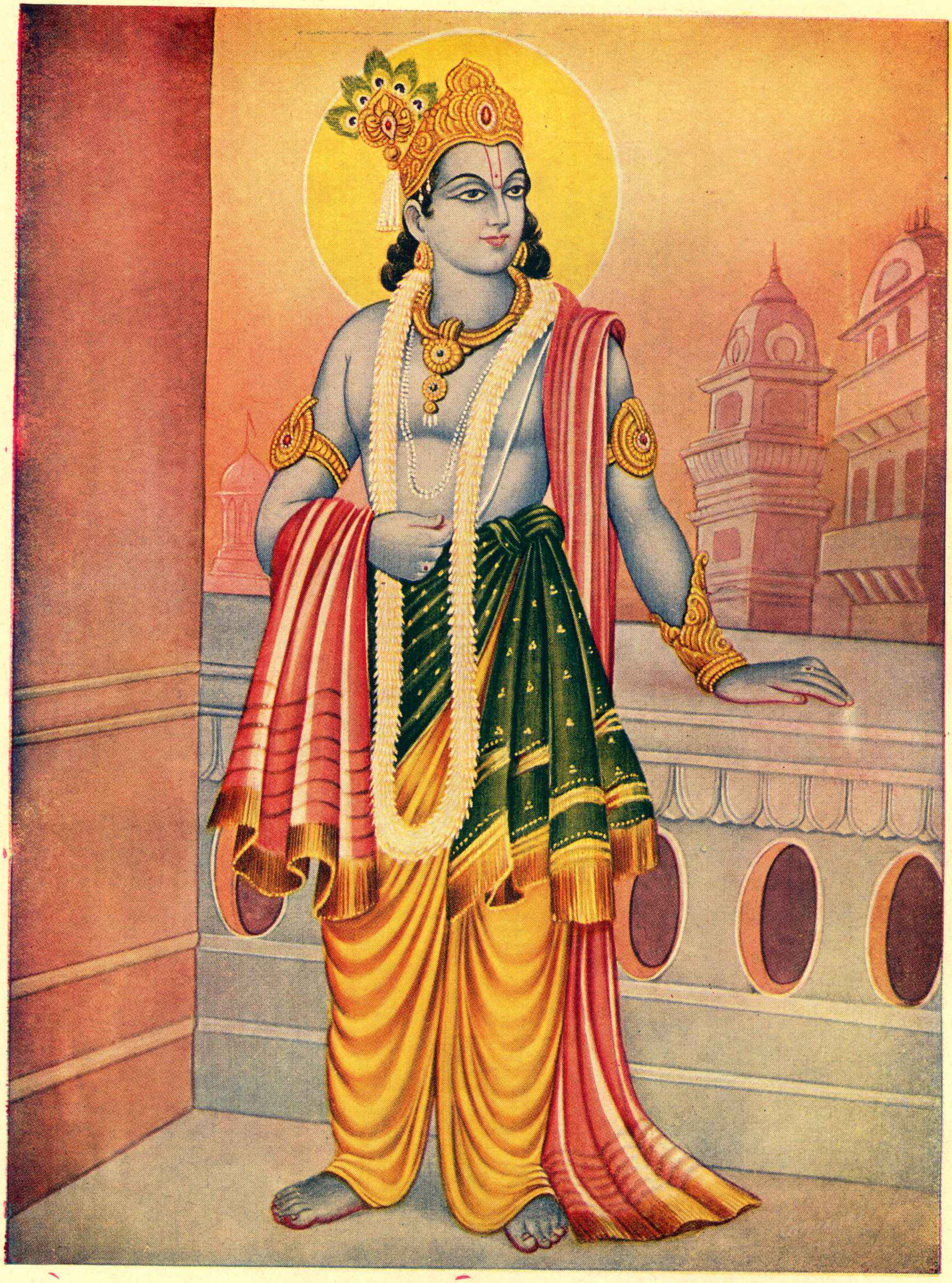

सन्धि-दूत—श्रीकृष्ण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च । यत्रैवोपशमं यान्ति तस्मै सत्यात्मने नमः ॥
यत्सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति च स्फुटम् । श्रुत्वा ह्युदीर्यते साम्नि तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

वर्ष ३५ } गोरखपुर, सौर भाद्रपद २०१८, अगस्त १९६१ { संख्या ८ पूर्ण संख्या ४१७

संधि-दूत—श्रीकृष्ण

शुद्ध सच्चिदानन्द दिव्य वपु मधुर अखिल जगके स्वामी ।
सबके परमेश्वर, सबके ही साक्षी, सर्वान्तर्यामी ॥
धर्मस्थापक, दुष्ट-दलन-कर्त्ता, सत्-संरक्षणकारी ।
संधि-दूत बन चले स्वयं श्रीकृष्ण भक्त-संकट-हारी ॥

कल्याण

याद रक्खो—भगवान् नित्य, सत्य हैं, आनन्दमय हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वेश्वर हैं और सुहृद् हैं। ये सब चीजें उनमें गुणरूपसे पृथक् नहीं हैं, स्वरूपभूत हैं, स्वभावरूप हैं। अतएव इन सब स्वरूप-भूत गुणोंको धारण किये ही भगवान् जीवमात्रके प्रति अहैतुक सौहार्द रखते हैं; क्योंकि सुहृद् रहना उनका स्वभाव है। अतएव उनकी अहैतुकी कृपा नित्य-निरन्तर अनन्तरूपसे तुमपर बरस रही है।

याद रक्खो—उन सर्वेश्वरके नियन्त्रणमें ही उन्हींकी शक्तिसे जीवमात्रके लिये विधानकी रचना होती है। उन सुहृद्का कोई भी विधान ऐसा नहीं हो सकता, जिससे परिणाममें हमारा तनिक-सा भी अहित—अमङ्गल होनेकी सम्भावना हो। न उनसे कभी भ्रम-प्रमाद होता है, न उनकी शक्तिमें ही कभी कोई कमी आती है, जिसके कारण विधानके निर्णयमें या उसके द्वारा मङ्गलकी सिद्धिमें कोई भ्रान्ति या त्रुटि आ सकती हो।

याद रक्खो—परम सुहृद्, अहैतुक कृपा-स्वभाव भगवान्के मङ्गल-विधानमें तुम्हें कहीं कभी जो प्रतिकूलताकी प्रतीति होती है और तुम दुखी हो जाते हो, इसमें तुम्हारा अज्ञान, तुम्हारी भ्रान्त धारणा और तुम्हारी अपना मङ्गलहित-सोचनेवाली बुद्धिकी विपरीतता ही प्रधान कारण है। उनकी विधान-रचना एवं उसके अनुसार उसका प्रत्येक फल वस्तुतः तुम्हारे परम हितके लिये ही है; क्योंकि वह उन्हींके द्वारा तुम्हें प्राप्त हो रहा है, जो नित्य सत्य आनन्दमय सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ होनेके साथ ही तुम्हारे स्वभाव-सुहृद् हैं।

याद रक्खो—तुम्हारे विश्वासकी कमीसे ही तुम उनके मङ्गल-विधानपर संदेह करके सदा दुखी रहते हो और उसके विरुद्ध अपने मनका विधान बनानेके लिये चिन्ता, संकल्प और प्रयत्न करते हो, जिससे परिणाममें तुम्हें उलटे निराशा, अशान्ति तथा दुःख ही मिलते हैं, शान्ति-सुख तो कभी दिखायी ही नहीं देते।

याद रक्खो—तुम यदि सर्वशक्तिमान् भगवान्के इस स्वभाव-सुलभ सौहार्दपर विश्वास कर लो तो तुरंत तुम्हारे मनको आश्वासन तथा शान्ति मिल जायगी, जो सारे दुःखोंका सदाके लिये नाश करके तुम्हें सहज सुखी बना देगी। फिर, तुम्हें उन प्रियतम प्रभुके द्वारा रचित प्रत्येक विधानमें, उनके द्वारा प्रेषित प्रत्येक परिस्थितिमें उनका परम मङ्गलमय मधुर मनोहर स्पर्श प्राप्त होता रहेगा। प्रत्येक परिस्थितिमें तुम विक्षोभरहित आनन्दपूर्ण नेत्रोंसे उनकी परम मङ्गलमय मधुर मनोहर मुसकानका साक्षात्कार करोगे। प्रत्येक परिस्थितिमें सहज ही तुम्हारा परम कल्याण चाहनेवाले उनके परम मङ्गलमय मधुर मनोहर सच्चिदानन्दमय मनके दर्शन होंगे और तुम दिव्य आनन्दसागरमें सदाके लिये निमग्न हो जाओगे।

याद रक्खो—विश्वास होते ही यह सब होने लगेगा। अशान्ति, दुःखका सारा अन्धकार उसी प्रकार भागने लगेगा, जिस प्रकार सूर्योदयसे पूर्व ही समस्त अन्धकार मरनेकी तैयारी करने लगता है। अतः तुम तो बस, नित्य-निरन्तर उनके मधुर मनोहर सुहृद्-स्वभावकी ओर देखते रहो, उसीका चिन्तन-मनन करते रहो तथा मनमें बराबर यही निश्चय करते रहो कि वे मङ्गलमय सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ प्रभु मेरे अकारण सुहृद् हैं। अतएव कोई भी पाप-ताप, भ्रान्ति-भय, अशान्ति-दुःख मेरे पास कभी आ ही नहीं सकते। आ ही नहीं सकते!

'शिव'

पथिक

(लेखक—श्रीसीतारामदास ॐकारनाथजी महाराज)

पथिक ! पथ भूल गये हो ?

भय मत करो । माँके नामका सहारा लो । केवल माँ-माँ कहकर पुकारो । माँ आकर तुम्हें ले जायँगी । विश्वास नहीं कर पा रहे हो ? पुकारो-पुकारो तुमको उत्तर मिलेगा । माँ हैं । कविकी कल्पनामात्र नहीं हैं, उपन्यास नहीं हैं । अत्यन्त सत्य बात है कि माँ हैं । बहुत दूर नहीं है । तुम्हारे भीतर माँ हैं, कामरूपिणी माँ—कामरूप पीठमें सतत निवास करती हैं । पुकारो, केवल माँ-माँ कहकर पुकारो । तुमको उत्तर मिलेगा । माँ तुमको ले जाकर अभीष्ट साध्यके साथ मिला देंगी ।

पुकारो, पुकारो, केवल पुकारो—उत्तर मिलेगा । जबतक उत्तर न मिले, तबतक पुकारते रहो । माँ उत्तर दिये बिना नहीं रह सकेंगी । माँके जाग उठनेके साथ-साथ तुम्हारे सारे शरीरमें रोमाञ्च हो जायगा । तुम पुलकसे भर जाओगे । पुकारो, पुकारो—केवल माँ-माँ कहकर पुकारो ।

भाई पथिक ! इस संसारमें माँके नामके समान महामहिमामय दूसरा कोई मन्त्र सृष्ट नहीं हुआ और न होगा । इसमें अधिकार-अनधिकारकी कोई बात ही नहीं है । इस माँ नामके महामन्त्रमें आबाल-वृद्ध-वनिता, अति पतित वर्ण, वर्ण-बाह्य, वर्णोत्तम सबका समान अधिकार है । क्योंकि माँ तो प्रत्येक संतानकी माँ हैं । जन्म ग्रहण करते ही सब लोग इस माँ नामके महामन्त्रकी उपासना करते हैं; परंतु पीछे अनेक मार्गोंके देशमें भटकते हुए मार्ग-भ्रष्ट होकर वेद-वेदान्त आदि क्या-क्या सीखना चाहते हैं, शान्ति-प्राप्तिके लिये—हरि-हरि ! इससे क्या हो सकता है ? माँका त्याग करके, माँका नाम छोड़कर क्या कोई शान्ति पा सकता है ? शान्ति नहीं पाता है, नहीं पाता है । जल-भुनकर खाहा हो जाता है । पुकारो, पुकारो पथिक ! प्राणपणसे पुकारो—माँ माँ माँ माँ—बोलो माँ माँ माँ माँ, अश्रु बहते रहें, बोलो माँ माँ माँ माँ !

देखो पथिक ! माँ तुमको कितना प्यार करती हैं ? तुम जब जो चाहते हो, माँ तुमको तब वही वस्तु देती हैं । विद्या-बुद्धि-रूप-ऐश्वर्य-मान-सत्कार सब कुछ माँने तुमको दिया है और सुनोगे पथिक ! यह सब भी माँ ही हैं । माँ ही स्वयं विद्या, बुद्धि, ऐश्वर्यादिके स्वाँग सजकर तुम्हारी आशा पूर्ण करती हैं । और भी सुनो पथिक ! तुम जब कामिनीके लिये आकुल हुए थे, तब मेरी माँने कामिनी बनकर तुम्हारे कामको चरितार्थ किया था । कामिनी और कोई नहीं है, माँने ही कामिनी बनकर तुम्हें निष्काम बनाया था । तुम पहचान नहीं पाते । पथिक ! याद करो, उस मार्गमें कितना संताप है, कितनी ज्वाला है, इसीसे तुम्हें पुकार कर कहता हूँ—भ्रान्त पथिक ! केवल माँ माँ कहकर पुकारो । तुम्हारे सारे दुःख, सारी ज्वालाएँ शान्त हो जायँगी । तुम्हारे काम-क्रोधादि शत्रु सखा बन जायँगे । केवल माँ-माँ कहकर पुकारो ।

पथिक ! यह तो कठिन बात नहीं है । उच्चारण करनेमें कोई कष्ट नहीं होता । बोलो, माँ माँ माँ । देखो पथिक ! इस माँ नाममें कितनी सुधा है ? क्षण-क्षणमें अमृत झर रहा है—बोलो, बोलो पथिक ! बोलो, माँ माँ माँ, मेरी माँ माँ माँ ।

अरे पथिक ! माँ नामके समान मनोरम रमणीय अनुपम मधुर रससे भरा रसतम नाम जगत्‌में दूसरा नहीं है । कितना मिठास है माँ नाममें । बोलो, बोलो भाई पथिक ! केवल बोलो माँ माँ माँ । मेरी माँ, मेरी माँ, मेरी माँ, मेरी माँ माँ माँ माँ माँ माँ ।

पथिक ! तुम बोलो माँ माँ माँ । तुमको कुछ चाहनेकी आवश्यकता नहीं होगी । माँ तुमको सब कुछ देंगी । तुम्हें कोई चिन्ता नहीं है । माँ-माँ कहते हुए आँखें मूँदे चलनेपर भी तुम्हें गिरनेका डर नहीं, केवल माँ-माँ बोलो । यदि गिरते हो तो देखोगे, माँके हृदयपर ही पड़े हो और माँने अपनी दोनों भुजाओंसे तुम्हें अपनी छातीसे लगा रक्खा है । बोलो पथिक ! बोलो—माँ माँ माँ । पथिक, संसारमें घात-प्रतिघात आयेंगे, उनसे डरना मत । तुम जिसको अमङ्गल समझकर आतङ्कित होओगे वही मानो माँका मङ्गल-हस्त है । माँ अमङ्गलके रूपमें मङ्गल देकर तुम्हें अपने हृदयपर खींच लेती हैं ।

साधन-क्षेत्रमें बहुत बाधाएँ—विपत्ति, प्रलोभन, रोग-शोक आयेंगे, उनको प्रेमसे ग्रहण करना । जान लो, बाधा-विपत्तिका रूप सजकर माँ ही तुमपर कृपा करने आयी हैं । बोलो पथिक ! बोलो, माँ माँ माँ । मार्गमें कितने-कितने मान, सम्मान, प्रतिष्ठा, ख्याति, अधिकार, सुख-स्वातन्त्र्य, अर्थ-ऐश्वर्य आदि आयेंगे, उनसे भी मत घबराना । वे सब माँ हैं, माँ ही अर्थ-ऐश्वर्यका रूप धरकर आती हैं और तुम्हें आनन्द देती हैं । फिर कुख्याति, निन्दा, अभाव, अशान्ति भी माँ ही हैं । नहीं, नहीं, माँके अतिरिक्त जगत्‌में और कुछ है ही नहीं । माँ ही सब बनकर लीला करती हैं । जगत् माँका ही श्रीविग्रह है ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य ये सब भी माँ हैं । माँ हमारी काम-क्रोध बनकर लीला करती हैं । केवल पुकारो माँ माँ माँ । उठते-बैठते, खाते-सोते माँ नामको कभी विराम मत दो । जीभ क्षणभर भी माँ नाम न छोड़े । केवल बोलो माँ माँ माँ । माँका मङ्गलमय रूप ही भगवान्‌का परम सौहार्दपूर्ण रूप है । यह सच्चिदानन्दमयी माँ सहज ही—स्वाभाविक ही संतानवत्सला हैं ।

पथिक ! जानते हो, यह माँ नाम कहाँ ले जायगा ? जहाँ रोग-शोक, दुःख-ताप नहीं है । है केवल अक्षय आनन्द । माँ नाम तुमको उसी आनन्दके नित्य देशमें ले जाकर परमानन्द-सिन्धुमें सदाके लिये निमज्जित कर देगा ।

बोलो पथिक बोलो माँ माँ माँ । एक श्वास भी व्यर्थ न जाने पाये । केवल बोलो, माँ माँ माँ माँ । मेरी माँ मेरी माँ मेरी माँ !

ज्योतिष्पथ

कृष्णपक्षकी पञ्चमीका चन्द्रमा जब ठीक मेरे सिरके ऊपर आता है और जिस कमरेमें मैं सोया होता हूँ उसकी छत और मेरी बेसुध पलकोंको बेधकर इस पृथ्वीके समुद्रोंके समान मेरे प्राणोंको अपनी ओर समेटने लगता है तब, बादके लिये, मेरे पास कुतूहलपूर्ण प्रश्नोंकी एक नयी माला तैयार हो जाती है । एक क्षण जब वह एक चञ्चल झलक दिखाकर दूसरे क्षण बादलके एक छोटे काले टुकड़ेको चीरकर और स्पष्ट रूपमें इसी पृथ्वीकी तिथिका चाँद बनकर निकलता है, तब मुझे साश्चर्य पूछना ही पड़ता है कि इसका और तुम्हारा क्या कोई निकटका नाता भी है ? मैं सोचने लगता हूँ कि तुमने मेरी रुचि रखनेके लिये इस धरतीके निकटवर्ती चन्द्रमा और तारोंके बीच होकर ही क्या मुझे आगे ले चलना तय कर लिया है ! मुझे कुतूहलपूर्वक संदेह होने लगता है कि ये चाँद-तारे कहीं शीघ्र ही मेरे व्यावहारिक जगत्‌में खुलकर कोई खास खेल खेलनेके लिये तो न उतर आयेंगे ! मेरा विचार होने लगता है कि कहीं सभी प्राणियोंके जीवनकी छोटी-बड़ी सभी प्रगतियाँ इन चाँद-तारोंके साथ, जाने और अनजाने रूपमें, एकदम गुँथी हुई तो नहीं हैं !

मैं नहीं समझ पाता कि मेरे आँगनोंमें तुम किस लिये और कौन-कौन-सी सुविधाएँ एवं साधन पाकर ऐसी अनोखी रचनाएँ रच पाते हो ।

[एक तरुण साधककी डायरीसे]

२६. ३. ३५

अनन्य भक्ति-साधनका स्वरूप

[एक कन्याका दृष्टान्त]

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

गीतामें भगवान्‌ने बतलाया है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
(११।५४)

'परंतप अर्जुन ! अनन्य भक्तिके द्वारा तो इस प्रकार रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

अनन्य भक्तिका साधन किस प्रकार करना चाहिये, इस विषयमें एक कन्याका दृष्टान्त बतलाया जाता है। राजस्थानके एक गाँवमें एक सुन्दर चौदह वर्षकी तरुणी अविवाहिता कन्या थी। उस कन्याकी विवाहके योग्य अवस्था देखकर उसके सम्बन्धके लिये पिता सदा चेष्टा करते रहते थे। एक बार एक अच्छे प्रतिष्ठित विद्वान् ब्राह्मणसे उसके पिताने कहा—'मेरी कन्याका सम्बन्ध अवश्य करना है।' उस ब्राह्मणने खोजकर एक अच्छे वरकी व्यवस्था कर दी और कहा—'वर बहुत ही सदाचारी, सद्गुणी, सुशील, वैभवसम्पन्न और सुन्दर है। उसके समान दूसरा कोई भी नहीं है। ऐसा वर मिलना कठिन है; किंतु उसके माता-पिता नहीं हैं।' ब्राह्मणने वरके पास भी यह समाचार पहुँचा दिया कि 'कन्या बड़ी सुन्दर, सुशील और युवा है।' इस प्रकार दोनोंको समझाकर सम्बन्ध करवा दिया। सम्बन्ध होनेके बाद उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने वरके द्वारा कन्याके लिये भेजे हुए अधोवस्त्र (साड़ी), उत्तरीय वस्त्र (ओढ़ना) और कब्जा, पायजेब आदि पैरोंके गहने, रत्नजटित करधनी, दोनों हाथोंकी दस स्वर्णकी चूड़ियाँ, कड़े, कंगन, बँगड़ी, बाजूबंद आदि हाथोंके गहने, गलेमें पहननेका रत्नजटित स्वर्णका कँठला, वक्षःस्थलपर धारण करनेका चन्द्रहार, कंठी, मोहनमाला, गलपटिया आदि, नाककी नथ, कानोंकी बालियाँ और कर्णफूल, मस्तककी चूडामणि एवं सिन्दूर आदि सौभाग्य-द्रव्य लाकर दिये। कन्या उन वस्त्राभूषणोंको पहनकर अपनी सहेलियोंके पास गयी। वे सब उसके इस शृंगारको देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं और बोलीं—'ये सब वस्तुएँ तुम्हारे पतिके यहाँसे आयी हैं न?' यह सुनकर वह कुछ लज्जित हो गयी। उन सहेलियोंमें एक दुष्ट लड़की थी, उसने उसकी एक चूड़ी खराब कर दी। कन्याने दुःखित होकर पिताके पास आकर कहा—'अमुक सहेलीने मेरी एक चूड़ी खराब कर दी।' पिताने कन्याको आश्वासन दिया और चूड़ीको ठीक करवा दिया तथा उस सहेलीके अभिभावकको उलाहना दिया। फिर सम्बन्ध करानेवाले ब्राह्मणको भी सारी बातें बताकर विवाह शीघ्र करनेके लिये अनुरोध किया।

ब्राह्मणदेवताने वरके पास जाकर कहा—'लड़की बहुत सुपात्र है। किसीने एक चूड़ी खराब कर दी, तब उसने उसको अपशकुन मानकर पिताके पास दुःख प्रकट किया। पिताने चूड़ी ठीक करवा दी। आपके भेजे हुए वस्त्राभूषणोंकी वह अच्छी तरह आदरपूर्वक सार-सँभाल रखती है। उसके पिताने शीघ्र विवाहके लिये अनुरोध किया है।' यह सुनकर वरने शीघ्र ही विवाह करना स्वीकार कर लिया। कुछ ही दिनों बाद वरने तिथि निश्चित कर दी और बारात लेकर कन्याको व्याहनेके लिये कन्याके पिताके यहाँ जा पहुँचा। विवाहके समय कन्याने वरके गलेमें वरमाला पहनायी और विधिपूर्वक विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वर उस कन्याको अपने साथ स्थानपर ले गया। उनके यहाँ ऐसी प्रथा थी कि वधूको वापस

नहीं भेजा जाता। किसीको मिलना होता तो वहीं आकर मिल लेते। उसके पति ही यदि कभी कोई विशेष आवश्यकता समझें तो उसे भले ही नैहर भेज दें, पर दूसरे किसीकी इच्छासे वह नहीं जा पाती। ऐसी आवश्यकताका अवसर जीवनभरमें किसीके लिये शायद ही कभी आता है।

उपर्युक्त कन्याके दृष्टान्तको दार्ष्टान्तमें इस प्रकार घटाना चाहिये। यहाँ अनन्य भक्तको ही कन्या समझना चाहिये। उसके १. निर्भयता, २. सात्त्विकी बुद्धि, ३. मन-इन्द्रियोंका संयम, ४. क्रोधका अभाव, ५. ममता और अहंकारका अभाव, ६. स्वार्थत्याग, ७. किसीकी निन्दा न करना, ८. विषयोंमें निर्लिप्तता, ९. कोमलता, १०. व्यर्थ चेष्टाका अभाव, ११. तेजस्विता, १२. धैर्य, १३. निर्वैरता तथा १४. मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके त्यागमें निपुणता—ये १४ गुण ही चौदह वर्षकी आयु है। श्रद्धा-विश्वास ही सुन्दरता है। प्रेम ही तरुणावस्था है, जो नित्य बढ़ता रहता है। भगवत्-मार्गमें लगानेवाले परम हितैषी पुरुष ही पिता हैं। भगवत्प्राप्त पुरुष ही सम्बन्ध करानेवाले श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण हैं। भगवान् मातृ-पितृ-विहीन वर हैं। लोक-मर्यादाकी रक्षाके लिये लज्जा ही अधोवस्त्र (साड़ी) है। शास्त्रमर्यादाकी रक्षाके लिये लज्जा ही उत्तरीय वस्त्र (ओढ़ना) है। शीत-उष्णको सहन करनारूप तितिक्षा ही कब्जा है। भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे तीर्थस्थान, देवालय और महात्माओंके दर्शनके लिये पैरोंसे उनके पास जाना ही पैरोंके पायजेब आदि गहने हैं। भगवान्‌की प्राप्तिके लिये कटिबद्ध होकर प्राणपर्यन्त प्रयत्न करना ही करधनी है। पाँच यम ही दाहिने हाथकी पाँच चूड़ियाँ हैं। यमोंका वर्णन योगदर्शनमें इस प्रकार किया गया है—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।
(योग० २ । ३०)

'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं।'

१. अहिंसा—किसी भी प्राणीको किसी प्रकार किसी भी निमित्तसे किंचिन्मात्र भी कभी कष्ट न देना 'अहिंसा' है।

२. सत्य—जो बात जैसी सुनी, समझी और देखी गयी, उससे न अधिक कहना, न कम कहना एवं कपट-रहित यथार्थ हितकर और प्रियवचन कहना 'सत्य' है।

३. अस्तेय—दूसरेके किसी भी पदार्थको चोरीसे, जोरीसे, ठगीसे किसी भी प्रकार कभी अपने अधिकारमें न करना 'अस्तेय' है।

४. ब्रह्मचर्य—किसी भी बालक-बालिका और स्त्रीके दर्शन, स्पर्श, भाषण, वार्तालाप, श्रवण, एकान्तवास, चिन्तन, हँसी-मजाक और सहवासका सर्वथा त्याग करना अर्थात् मन, वाणी, शरीरसे किसी प्रकार भी किंचित् भी अश्लील चेष्टा न करना 'ब्रह्मचर्य' है। इसी प्रकार स्त्रीके लिये पुरुषके प्रति समझ लेना चाहिये।

५. अपरिग्रह—अपने ऐश-आराम और भोगके लिये किसी पदार्थका कभी संग्रह न करना 'अपरिग्रह' है।

सब देश, सब काल, सब जाति और सब निमित्तोंमें सेवन किये हुए उपर्युक्त पाँचों यम 'महाव्रत' कहे जाते हैं। योगदर्शनमें बताया गया है—

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।
(२ । ३१)

'उक्त यम जाति, देश, काल और निमित्तसे रहित सार्वभौम होनेपर 'महाव्रत' हो जाते हैं।'

इसी प्रकार पाँच नियम ही बायें हाथकी पाँच चूड़ियाँ हैं। नियमोंका वर्णन योगदर्शनमें इस प्रकार किया गया है—

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।
(२ । ३२)

'शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान—ये पाँच नियम हैं।'

१. *शौच*—बाहर-भीतरकी पवित्रताको 'शौच' कहते हैं। बाहरकी पवित्रता है शौचाचार-सदाचार। भीतरकी पवित्रता है दुर्गुण-दुराचारोंके संस्कारोंका अभाव।

२. *संतोष*—ईश्वरके मङ्गलमय विधानके अनुसार अनुकूल और प्रतिकूल क्रिया, भाव, पदार्थ और परिस्थिति-की प्राप्तिमें सदा संतुष्ट—प्रसन्नचित्त रहना 'संतोष' है।

३. *तप*—मन और इन्द्रियोंका संयम करके त्यागपूर्वक व्रत, उपवास आदि धर्मका पालन करनेके लिये कष्ट सहन करना 'तप' है।

४. *स्वाध्याय*—भक्ति-ज्ञान-वैराग्य-सदाचारपरक श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराण आदि शास्त्रोंका अर्थ और भाव समझते हुए अध्ययन करना 'स्वाध्याय' है।

५. *ईश्वर-प्रणिधान*—श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निष्कामभावसे ईश्वरके प्रणव आदि नामोंका जप और स्वरूपका चिन्तन करते हुए करुणाभावपूर्वक ईश्वरके शरणापन्न होना—'ईश्वर-प्रणिधान' है।

हाथोंसे सेवा, पूजा, यज्ञ, दान, परोपकार आदि सत्कार्य करना ही कड़े-कंगन, बँगड़ी, बाजूबंद आदि हाथोंके गहने हैं। भक्ति-ज्ञान-वैराग्यपरक गीता, रामायण, भागवत आदिको कण्ठाग्र करना ही गलेका भूषण रत्नजटित 'कँठला' है। क्षमा, दया, शान्ति, समता, उदारता, ज्ञान-वैराग्य आदि हृदयके उत्तम भाव ही वक्षःस्थलके चन्द्रहार, कण्ठी, मोहनमाला, गलपटिया आदि गहने हैं। नासिकाके द्वारा भगवान्‌के दिव्य विग्रहमें दिव्य गन्धका अनुभव करना ही नाककी नथ है। भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, लीला आदिका श्रवण ही कानोंकी बालियाँ तथा अपनी निन्दा और अपवाद सुनकर संतुष्ट रहना ही कानके कर्णफूल हैं। विनय और प्रेमपूर्वक भगवद्भावसे सिरसे सबको नमस्कार करना मस्तककी चूडामणि है। भगवान्‌में दृढ़तापूर्वक अनन्यप्रेमभावसे एकनिष्ठा ही सौभाग्यचिह्नरूप सिन्दूर है।

सत्संगी मित्र साधकोंका सङ्ग ही सहेलियोंका सङ्ग है। उत्तम गुण और उत्तम आचरणरूप वस्त्राभूषणोंको देखकर जो मित्रोंके द्वारा प्रशंसा की जाती है, उसे सुनकर साधकका लज्जित होना ही कन्याका लज्जित होना है, यही उस कन्याकी महत्ता है। साधनमें बाधा पहुँचाने-वालेको ही चूड़ी खराब करनेवाली दुष्ट सहेली समझना चाहिये। शौच-स्नान, नित्यकर्म आदि साधनमें विघ्न डालना ही चूड़ीको खराब करना है। परम हितैषी पुरुषके द्वारा शौच-स्नान, नित्यकर्मका सुचारुरूपसे प्रबन्ध किया जाना ही पिताके द्वारा चूड़ीको ठीक करवाया जाना है। साधकको भगवान्‌से मिलनेके लिये उत्कण्ठित और पात्र देखकर जो परम हितैषी पुरुषके द्वारा भगवत्प्राप्त पुरुषसे भगवद्दर्शनके लिये अनुरोध कराना है, यही कन्याको विवाहके लिये उत्सुक, सयानी और योग्य देखकर पिताके द्वारा ब्राह्मणसे शीघ्र विवाहके लिये अनुरोध करवाना है। साधकके उत्तम गुण, स्वभाव और चरित्रोंका भगवान्‌के प्रति वर्णन करना वरके प्रति कन्याके गुण-स्वभाव-चरित्र वर्णन करना है। भगवान्‌का उस साधकको दर्शन देनेका निश्चय करना ही वरका कन्याके साथ विवाह स्वीकार करना है; क्योंकि भगवान् किसीके पुरुषार्थसे नहीं मिलते। वे तो उसीको मिलते हैं जिसको वे स्वयं स्वीकार कर लेते हैं। कठोपनिषद्‌में बतलाया गया है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥
(१।२।२३)

'ये परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचनसे, न बुद्धिसे और न बहुत सुननेसे ही प्राप्त हो सकते हैं, बल्कि जिसको ये परमात्मा स्वीकार कर लेते हैं, उसके द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं; क्योंकि ये परमात्मा उसके लिये अपने यथार्थ स्वरूपको प्रकट कर देते हैं।'

भगवान्का प्रकट होकर दर्शन देना ही कन्याके घरपर वरका पधारना है और भगवान्का दर्शन करके उनको पुष्पमाला पहनाना ही कन्याके द्वारा वरमाला पहनाना है। भगवत्-प्राप्ति ही विवाह है। साधकका भगवान्के परमधाममें जाना ही कन्याका पतिके स्थानमें जाना है। परमधाममें जाकर पुनः इस संसारमें लौटकर न आना ही स्त्रीका नैहर वापिस न आना है। विशेष आवश्यकता पड़नेपर भगवान्के द्वारा आज्ञा और अधिकार पाकर उस महात्माका लोगोंका उद्धार करनेके लिये संसारमें आना ही स्त्रीका भगवदिच्छासे नैहरमें आना है।

अनन्य भक्तिका साधन किस प्रकार किया जाय— इसे समझानेके लिये ही यह कन्याका दृष्टान्त बताया गया है। इसे साधक पुरुषको अपनेमें घटाना चाहिये। अनन्य भक्तिके साधकको भक्ति, ज्ञान, वैराग्यके रसमें सदा-सर्वदा मग्न रहना चाहिये। भगवान्के नामका जप और उनके स्वरूपका ध्यान श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निष्कामभावसे तत्परता और उत्साहके साथ निरन्तर करते रहना चाहिये। उसके प्रभावसे मनुष्यमें उपर्युक्त उत्तम गुण और उत्तम चरित्र सहजमें ही प्रकट हो सकते हैं। फिर तो ऐसे उत्तम गुण और उत्तम चरित्ररूप दैवी सम्पदावाले साधक महात्माके द्वारा अनन्यभावसे प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन अनायास स्वाभाविक ही होता रहता है। भगवान्ने गीतामें बतलाया है—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥
(९।१३)

'अर्जुन! दैवी प्रकृतिके आश्रित उच्चकोटिके साधक महात्माजन तो मुझको सब भूतोंका सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मनसे युक्त होकर निरन्तर भजते हैं।'

अतएव हमलोगोंको नित्य-निरन्तर उपर्युक्त साधनकी सम्पन्नताके लिये सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये। सत्पुरुषोंका सङ्ग न मिले तो उत्तम साधकोंका सङ्ग करके अपना साधन बढ़ाना चाहिये। साधकोंका सङ्ग भी न मिले तो जिनमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और भगवान्के गुण, प्रभाव, तत्त्व-रहस्यका वर्णन हो, उन ग्रन्थोंका अर्थ और भाव समझते हुए श्रद्धा, प्रेम और वैराग्यपूर्वक अनुशीलन करना चाहिये।

मैं सदा श्रीराधामाधवको दिव्य लीला करते देख रहा हूँ

देख रहा मैं, करते लीला श्रीराधामाधव सुखधाम।
नित्य निकुंज निभृतमें रसमय मधुर मनोहर दिव्य ललाम॥
त्यागमयी सब सखी-मंजरी रहती सेवामें तल्लीन।
किये नित्य राधा-माधव सुख-सेवा-रस-निधिमें मन मीन॥
उठती रस-समुद्रमें प्रति-पल दिव्य विविध रसमयी तरंग।
नित्य नवीन सुधा विस्तारिणि, नित्य नवीन दिव्य रस-रंग॥
नहीं काम आदिक विकार कुछ, नहीं वासना-लेशाभास।
चिदानन्दमय होता रहता परम अलौकिक रास-विलास॥
मिटी सकल कल्पना जगत्की, नहीं रह गया कुछ अवशेष।
लीलामय श्रीराधामाधव, लीला नित नव, शेषी शेष॥

भवतरणोपाय

(लेखक——श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज)

शास्त्रोंमें भवसागर-तरणके विविध उपाय कहे गये हैं। उनमें इस निबन्धमें मुझे श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीके द्वारा कहे हुए उपायोंके तारतम्यपर विचार करना है। श्रीगोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसके प्रारम्भमें ही भवतरणका सर्वश्रेष्ठ निश्चित उपाय कहा है; यथा—

'यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्

(मङ्गल० ६)

'भवसागर तरनेकी इच्छावालोंके लिये जिनके चरणकमल ही एक नाव है।' इससे अन्य समस्त उपायोंका भरोसा छोड़कर उन श्रीरामजीके चरणको ही उपायरूपमें वरण करना चाहिये; यही शरणागति है।

अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम्।
तदेकोपायतायाच्ञा प्रपत्तिः शरणागतिः॥

(भरताचार्य)

अपना अभीष्ट अन्य उपायोंसे सिद्ध होता न देखकर 'आप ही एकमात्र मेरे उपाय हैं, महान् विश्वासपूर्वक ऐसी याचना करनेको शरणागति एवं प्रपत्ति कहते हैं। श्रीमुखवचन भी है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

'यह मेरी गुणमयी दैवी माया दुस्तर है (पर) जो एकमात्र मेरी ही शरण ग्रहण करते हैं, वे इस माया (के कार्यरूप भव-सागर) को तर जाते हैं।' इस हरि-शरणागतिके छः भेदोंमें 'आनुकूल्यस्य संकल्पः' यह प्रथम एवं प्रधान है। इसकी सिद्धि श्रीरामजीके नाम, रूप, लीला एवं धामकी निष्ठासे होती है; यथा—

रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या विचिन्त्य वाचा ब्रुवती तमेव।
तस्यानुरूपं च कथां तदर्थामेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि॥
... ...
विचिन्तयन्ती सततं तमेव तथैव पश्यामि तथा शृणोमि॥
मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि·········"

(वाल्मीकि० ५। ३२। ११-१२)

अर्थात् अशोकवाटिकामें श्रीहनुमान्‌जीके सूक्ष्म रूपसे श्रीरामचरित सुनकर श्रीसीताजीने किसी वक्ताको न देखकर अनुमान किया कि मैं बुद्धिसे जो श्रीरामजीको ही सोचा करती हूँ और वचनसे 'राम-राम' ऐसा कहती रहती हूँ, उसीसे मैं अपने विचारोंके अनुसार उस राम-नामकी अर्थरूपा यह कथा सुन रही हूँ।'········मैं सदा उन्हींका चिन्तन एवं दर्शन करती रहती हूँ, इससे वैसा ही सुन रही हूँ। अतः यह मेरा मनोरथ ही (संकल्प ही) हो सकता है।

यहाँ श्रीसीताजीने नाम-रूप-लीलाकी निष्ठासे 'आनुकूल्यस्य संकल्पः' की सिद्धि दिखलायी है। इसी निष्ठासे श्रीजीने मोहरूपी रावणकी क्रीडास्थली प्रवृत्तिरूपी लङ्कासे छूटनेका उपाय दिखाया है; क्योंकि इनकी इसी निष्ठापर श्रीरामजी इनके लिये व्याकुल थे। श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा अपना प्रताप दिखाया, तब जीवरूपी विभीषण शुद्ध शरणागत हुए और श्रीरामजीके द्वारा विपत्तिसे छूटकर श्रीरामपरिकर हो कृतार्थ हो गये।

इसीसे श्रीगोस्वामीजीने सर्वत्र श्रीरामजीके चरित्र और नामसे ही 'भवतरण' कहा है। उनके भिन्न-भिन्न स्थलोंके भिन्न-भिन्न प्रकारके भव-तरण रहस्य पाये जाते हैं। उनके तारतम्य रहस्य प्रकट करनेके लिये कुछ उदाहरण लिखे जाते हैं—

(क)

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जस॥

(रामचरितमानस बाल० १४)

भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥

(रामचरितमानस उ० ५२)

(ख)

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

(रामचरितमानस बाल० ३०)

(ग)

यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव कूपा॥

(रामचरितमानस बाल० १९२)

(घ)

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥

(रामचरितमानस उत्तर० १२८)

(ङ)

नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं । करहु बिचार सुजन मन माहीं ॥

(रामचरितमानस बाल० २४)

इन उद्धृत प्रसंगोंमें क्रमशः चरितसे ही भवसागरका सरित होना, कूप होना और गोपद-जलमात्र रह जाना और फिर अन्तमें नामसे उसका सूख जाना कहा गया है। भवसागर-में क्रमशः अधिक ह्रासता लानेमें उन-उन प्रसंगोंके चरितोंमें रहस्य हैं, उनपर क्रमशः यथामति विचार किया जाता है—

(क)

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस ।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जस ॥

भगवान् श्रीरामजीके निःश्वासरूप वेद उनके विशद यश-का ही वर्णन करते हैं । अतः वे भी रामकथारूपसे ही भवसागरकी बड़ी नाव हैं । वेदोंमें यजु० अ० ४० मन्त्र १५-१६ तथा ईश० १७-१८ में भव-तरणका उपाय 'नम उक्तिं विधेम' इस अन्तिम वाक्यसे (महा० वन० १८९ । ५७-५८ के अनुसार) हरिशरणागति ही कहा गया है। तथा महा० शान्ति० (४७ । ९०-९१) में भी नमस्काररूप शरणागतिका फल भव-तरण ही कहा गया है ।

किंतु वेदोंके परम गुह्य रहस्योंको न समझकर उसके अधिकांश यज्ञादि कर्मोंमें सकामतासे बहुत-से जीव भव-तरण-के लिये मनुष्यशरीर पाकर भी भव-सिंधुकी चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करते हुए दुःख पाने लगे ।

ब्रह्माजी वेदवक्ता हैं; क्योंकि भगवान्ने उनके हृदयमें वेदका विस्तार कर दिया, तब उन्होंने कहा है—(श्रीमद्भागवत मंगला० तथा श्वेता० ६ । १८ देखिये)। श्रीब्रह्माजी ही जीवोंकी बुद्धिके देवता भी हैं । इससे जीवोंके वैदिक सकाम कर्मोंसे भव पड़नेपर ब्रह्माजीने उन ब्रह्मप्राप्त्यर्थ नरतनधारी जीवरूप ब्राह्मणोंकी हत्या मान उसकी शुद्धिके लिये वाल्मीकि-शरीर धारण किया; यथा—

वाल्मीकिरभवद्ब्रह्मा वाणी वाक्तृत्वरूपिणी ।
चकार रामचरितं पावनं चरितव्रतः ॥

(स्कन्दपुराण)

ब्रह्मणा निर्मितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ।
वाल्मीकिना च यत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम् ॥

(स्कन्दपु०, प्रभास०)

यहाँ संसाररूपी वनमें भी गुणरूपी कोलोंके सङ्गसे वे पूर्वाभ्याससे ब्रह्महत्या करते थे । तब सप्तर्षियोंके उपदेशसे 'मरा' इस उलटे नामके जपसे वे नाम-प्रतापसे शुद्ध हुए; यथा—

जान आदिकबि नाम प्रतापू । भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥

(रामचरितमानस बाल० १८)

मायाके तीनों गुणोंके सङ्गसे आये हुए विकारोंका 'मरा' नामसे इस प्रकार शोधन हुआ । इस नामके प्रथमाक्षर 'म' से 'मदी-हर्षे' इस धात्वर्थसे ब्रह्मके 'आनन्द' रूप कोषकी प्राप्ति हुई, इससे तमोगुणके शब्दादि विषयरूप मायाका कोष जाना गया । फिर द्वितीयाक्षर 'र' के 'राजृ-दीप्तौ' इस धात्वर्थके द्वारा विवेक-विराग आदि दिव्य गुणोंकी प्राप्तिसे मायाके रजो-गुण विकाररूप काम, क्रोध आदि सैनिक जीते गये । तब अन्तिम वर्ण 'आ' से अपनी स्वरूप-सत्ताकी प्राप्ति हुई ।

इस प्रकार वाल्मीकिजी महर्षि हुए और उन्होंने रामायण निर्माण कर वेदोंके ही रहस्योंका स्पष्टीकरण कर अपने पूर्वजन्म-की कमीकी पूर्ति की; यथा—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥

(वाल्मीकि० मू० रा० माहात्म्य)

वेदवेद्य परम पुरुष श्रीरामजी जब दशरथपुत्र होते हैं, तब वेद ही रामायणरूपसे वाल्मीकिजीके द्वारा प्रकट होते हैं । अतः रामायणमें वेदतत्त्वोंका ही विस्तार है; यथा—

तासां क्रिया तु कैकेयी सुमित्रोपासनात्मिका ।
ज्ञानशक्तिश्च कौसल्या वेदो दशरथो नृपः ॥

(शिवसंहिता १८ । ४६)

उनमें श्रीकैकेयीजी 'क्रियाशक्ति', सुमित्राजी 'उपासना-शक्ति' और श्रीकौसल्याजी 'ज्ञानशक्ति' हैं । (इन तीनों काण्डरूपी तीनों शक्तियोंसे युक्त) वेद ही चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराज हैं ।

रामायणमें वेदके अवतार श्रीदशरथजीने सत्य-धर्म-रक्षण-के साथ ब्रह्ममें प्रीति प्रकट की है । क्रियाशक्ति कैकेयीजीकी निष्कामावस्थामें श्रीभरत-जैसे परम विवेकी पुत्र हुए और सकामता आनेपर कलहसे भारी विपत्ति पड़ी । उपासना-शक्ति सुमित्राजीके एक पुत्र श्रीलक्ष्मणजीने ब्रह्मोपासनाकी रीति प्रकट की है और दूसरे पुत्र श्रीशत्रुघ्नजी प्रत्यगात्मस्वरूप श्रीभरतजी-

के उपासक हुए, दोनों ही उपासक अन्तमें श्रीराम-परिकर ही हुए। परम विवेकी श्रीभरतजीने माता कैकेयीके आकांक्षित चौदह वर्षके राज्य-भोगकी पूर्ति करते हुए प्रभुपद-चिह्नित खड़ाऊओंके आधारपर अपने प्रत्यगात्म-स्वरूपकी रक्षा की है और फिर अन्तमें उन्होंने भी श्रीराम-परिकर हो सफलता पायी है। ज्ञानशक्ति-(सरस ज्ञान एवं पराभक्ति) रूपिणी श्रीकौसल्या-जीके पुत्र साक्षात् परब्रह्म श्रीरामजी ही हुए हैं।

इसी प्रकार रामायणके सभी चरित्र वेदोंके रहस्योंके विस्ताररूप ही हैं। उलटे नामकी आराधनासे वाल्मीकिजीने उतनी सफलता पायी तो फिर सीधे नामकी आराधनाकी लालसासे वे श्रीतुलसीदासके रूपमें अवतरित हुए; यथा—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भये।

(भक्तमाल——नाभाजी)

सीधे राम-नामकी आराधना कर भाषामें अद्भुत प्रभाव-शाली श्रीरामचरितमानस आदि द्वादश ग्रन्थोंका निर्माण किया, इससे सभी जीव भवसागर पार होने लगे; यथा—

भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥

(उ० दो० ५२)

ऊपर वेदोंको 'बोहित सरिस' कहा था और यहाँ राम-कथाको 'दृढ़ नावा' कहा है; क्योंकि इससे सर्वसाधारणजन भी निर्विघ्न भवसागर पार हो जाते हैं।

(ख)

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

'अपने संदेह, मोह और भ्रम हरण करनेवाली एवं भव-नदीके लिये नावरूपिणी कथा कहता हूँ' यहाँ श्रीरामचरित-मानसको तत्त्वत्रय-निरीक्षण-दृष्टिसे पढ़नेवालोंके लिये भवसागर-का नदी मात्र रह जाना और तरणी (छोटी नाव) मात्रसे नदी पार होनेके समान अल्प श्रममें भव पार होना कहा गया है।

इस अर्द्धालीमें संदेह, मोह, भ्रम क्रमशः ईश्वर, जीव और मायापरक हैं— १. 'संदेह' इसका अर्थ संशय अर्थात् किसी वस्तुके ज्ञानमें द्विविधा होना, यह होता है। जैसे श्रीराम-जीको परब्रह्म मानकर श्रीशिवजीने प्रणाम किया, परंतु सतीजी-को चरितकी दृष्टिसे वे मनुष्य ही समझ पड़े, फिर यह विचार करनेपर संदेह हो गया कि शिवजी ईश हैं, इनका निश्चय अन्यथा कैसे हो सकता है? यही द्विविधा-ज्ञानरूपमें संदेह हुआ; यथा—

सती सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेह बिसेषी॥

(रा० च० मानस बाल० ४९)

फिर बार-बार इसे ही 'संशय' 'संदेह' कहा गया है। सम्पूर्ण चरितके उपसंहारपर भी कहा गया है—

नाथ कृपा मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा॥

(उत्तर० दो० १२८)

अतः यहाँपर 'संदेह' पदसे ईश्वर-तत्त्व-विषयक संशयका अर्थ है।

२. 'मोह' इसका अर्थ अविवेक एवं मूर्च्छा होता है। मूर्च्छित व्यक्तिको जैसे अपने शरीरकी सुधि नहीं रहती, वैसे अपने वास्तविक स्वरूपको भूलकर जीव देहको ही अपना स्वरूप मानता हुआ, देहकी दसों इन्द्रियोंसे अपनेको ही भोक्ता मानता है, यही इसमें दशमुखता है; यथा—

मोह दसमौलि·········

(विनयपत्रिका ५८)

सेवहिं लखन सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥

(रामचरितमानस अयो० १४१)

अतः यहाँ 'मोह' इस पदसे जीवस्वरूपके अज्ञानका अर्थ है।

३. 'भ्रम' इसका अर्थ अचित् (माया) तत्त्वमें अनिश्चय होना है, जैसे ब्रह्मके शरीररूप जगत्‌में नानात्व सत्ताका भ्रम होता है। यथा—

रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।'

जासु सत्यता ते जड़ माया।·······भ्रम न सकइ कोउ टारि॥

(रा० च० मानस बाल० ११७)

इस कथासे क्रमशः ईश्वर, जीव और मायाके विषयमें संदेह, मोह और भ्रमके हरण होनेपर ईश्वरके शरीररूप जगत्-का नानात्व भ्रम दूर होकर सर्वत्र फैली हुई जीवकी प्रीति सर्व-शरीरी ईश्वरमें होती है। स्वरूप जाननेपर इस ईश्वर-अंशभूत जीवका अंशी ईश्वरमें अहर्निश अनुराग रहना ही दृढ़ होता है। तब भक्तिके आनन्दके साथ जगत्‌में प्रारब्ध-भोगपर्यन्त रहता हुआ भी जीव छोटी नावसे नदी पार होनेके समान भव पार होकर हरि-सांनिध्यमें प्राप्त हो जाता है। अतः यहाँपर ऐसा कहना युक्त ही है।

(ग)

यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव कूपा॥

इस अर्द्धालीके चरितके समक्ष भवसागर कूपमात्र रह गया है। इसका साधन 'यह चरित जे गावहिं ''''''' यह कहा गया है। इस चरितका प्रारम्भ 'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी' से होकर यहाँतकका यह छन्दमात्र है।

श्रीकौसल्याजीने पूर्वजन्ममें परम अनन्य भक्तिका वर माँगकर पाया था और साथ ही श्रीरामजीने इन्हें अलौकिक विवेक भी दे रक्खा था। इसीसे इनका हित करनेके लिये इनके समक्ष आपने साक्षात् रूपसे प्रकट हो दर्शन दिये। फिर इन्हें वात्सल्य-रसके सुख देनेके लिये श्रीरामजीने मुस्कानद्वारा अपनी मायासे इनके ज्ञानको थोड़ा ढक दिया। आगे दो० २०० पर श्रीरंगपूजाके प्रसंगपर इन्हें अपना विराट् रूप दिखा इनके पूर्वके अलौकिक विवेकको और दृढ़ कर दिया है। फिर इन्हें कभी मायाका सम्पर्क नहीं हुआ, इससे ये कभी भवकूपमें नहीं पड़ीं। भवकूप—

काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥
(रा० च० मानस, उत्तर० ७३)

इसीको श्रीमद्भागवत (११ । १७ । ५६-५८ तथा ४ । २५ । ६ एवं ७ । ५ । ५) में भी पुष्ट किया गया है।

श्रीकौसल्याजीको कभी गृहासक्तिका दुःख नहीं हुआ। श्रीराम ऐसे पुत्रके प्रथम वियोगमें श्रीविश्वामित्रजीके साथ जानेमें अपने विवेकसे इन्हें दुःख नहीं हुआ। फिर चौदह वर्षके वनवासवाले वियोगमें भी इन्हें विरह-दुःख नहीं हुआ, यथा—

क्षयो हि वनवासस्य क्षिप्रमेव भविष्यति।
सुप्तायास्ते गमिष्यन्ति नव वर्षाणि पञ्च च॥
(वाल्मीकि० २ । ३५ । ३४-३५)

श्रीरामजीने अपनी वनयात्रापर कौसल्याजीसे कहा है कि यह वनवास शीघ्र समाप्त हो जायगा। आपके सोते हुएकी भाँति (एक रातके समान) चौदह वर्ष बीत जायँगे। श्रीकौसल्याजीने स्वयं भी कहा है—

माई री! मोहि न कोउ समुझावै।
राम गवन साँचो किधौं सपनो, मन परतीति न आवै॥१॥
लगेइ रहत मेरे नयननि आगें राम लखन अरु सीता॥
(गीतावली, अयोध्या० ५३)

इस चरितसे शिक्षा पा मुमुक्षु अनन्य भक्ति एवं विवेकमें दृढ़ श्रद्धा कर उसे गीता (७ । २१-२२) की रीतिसे सफल करेगा। फिर भक्तिकी गाढ़ स्मृतिमें आँखोंमें बसे श्रीरामजी उसे सर्वत्र देख पड़ेंगे। इससे उसे सदा आनन्द एवं संतोष रहेगा। इससे वह उक्त भवकूपमें कभी नहीं पड़ेगा।

(घ)

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भव निधि तरहीं॥

यह अर्द्धाली सम्पूर्ण ग्रन्थकी समाप्तिपर कही गयी है, इसमें श्रीरामचरितके कथन, श्रवण और अनुमोदनके फलस्वरूपमें भवसागरका गोपद-जलवत् तरण करना कहा गया है। इसका रहस्य भगवान्ने स्वयं कहा है। यथा—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥
(गीता १० । ९—११)

'जिनका चित्त अनुरागपूर्वक मुझमें ही लगा रहता है, जिनके प्राण समस्त इन्द्रिय-चेष्टाओंसे मेरी ही सेवामें लगे रहते हैं, जो मेरे ही तत्त्वज्ञानमें परस्पर सत्संगद्वारा लगे रहते हैं, जो नित्य मेरे ही गुणोंका कथन किया करते हैं और इसीमें संतुष्ट होते एवं रमण (क्रीड़ा) मानते हैं। उन निरंतर प्रीतिपूर्वक भजन करनेवालोंको मैं वैसी बुद्धिका संयोग कर देता हूँ, जिससे वे मुझे पा जाते हैं। उनपर दया करके मैं उनके हृदयमें ज्ञानदीपक बढ़ाते हुए उनके अज्ञानान्धकारका नाश करता हूँ।'

यहाँकी उपर्युक्त अर्द्धाली 'कहहिं सुनहिं ''''' के ऊपर पास ही—

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना॥

—यह अर्द्धाली आ चुकी है। उसका तात्पर्य यह है कि श्रीरामचरितमानसके सातों काण्ड क्रमशः भक्तिमार्गकी उत्तरोत्तर बढ़नेकी सीढ़ियाँ हैं। अन्तिम सोपान उत्तरकाण्डकी फलश्रुति 'अविरल हरिभक्ति सम्पादन' की है। अतः अन्तिम सोपानकी इस अर्द्धालीतक पढ़कर जो अविरल हरिभक्ति प्राप्त कर चुका है, उसका कहना, सुनना एवं अनुमोदन करना उपर्युक्त गीतोक्त वचनोंके अनुसार होता रहेगा। इससे भगवान्से प्राप्त

बुद्धियोगसे चरित-अनुमोदनके आनन्दमें उसकी अवशिष्ट प्रारब्ध भोगकी आयु गोपद-जल लाँघनेकी भाँति बीत जाती है। वह भगवान्‌को प्राप्तकर कृतकृत्य हो जाता है।

(ङ)

नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं ॥

यहाँ 'सुखाहीं' यह पद बहुवचन है। अतः जैसे सागर सात हैं, वैसे भवसागर भी व्यष्टि-भेदसे सात हैं। भवसिंधु आधिदैहिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीनों तापोंसे भरा रहता है। इन तापोंके कारण संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण—ये तीनों सकाम शुभाशुभ कर्म हैं; तथा कर्मोंके सकाम होनेमें कारण अविद्या है। अतः तीनों ताप, तीनों कर्म और अविद्या—ये ही सातों भवसागरके सातों व्यष्टि-भेद हैं।

अथवा सप्तधातु-निर्मित देहमें अविद्यासे अभिमान होता है, फिर उससे सकाम शुभाशुभ कर्म होते हैं, तदनुसार तीनों ताप होते हैं। इस प्रकार भी सप्तधातु-निर्मित देहका अभिमान सप्तसागर है। यथा—

कुनप अभिमान सागर भयंकर घोर······

(बिनय-पत्रिका ५८)

अब श्रीराम-नाम लेते हुए इन सप्तसागरोंका सूखना देखिये—

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥

(रामचरितमानस बाल० १८)

मैं रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामजीके 'राम' इस नामकी वन्दना करता हूँ। जो (जिसके र, अ, म ये तीनों वर्ण क्रमशः) अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाका कारण एवं बीज है।

महारामायणमें राम-नामके इन अर्थोंकी व्याख्या है। यथा—

रकारोऽनलबीजं स्याद्ये सर्वे वाडवादयः।
कृत्वा मनोमलं सर्वं भस्म कर्म शुभाशुभम् ॥ ६२ ॥
अकारो भानुबीजं स्याद्वेदशास्त्रप्रकाशकम्।
नाशयत्येव सद्दीप्त्या याविद्या हृदये तमः ॥ ६३ ॥
मकारश्चन्द्रबीजं च सदम्बुपरिपूरणम्।
त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च ॥ ६४ ॥
रकारो हेतुर्वैराग्यं परमं यच्च कथ्यते।
अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्तिहेतुकम् ॥ ६५ ॥

(अ० ५२)

रकार बड़वानल आदि अग्नियोंका बीज है, यह मनोमलरूप सभी शुभाशुभ कर्मोंको भस्म कर देता है। अकार सूर्यका बीज है, इससे यह वेद-शास्त्रका प्रकाशक है, यह सद्दीप्तिसे हृदयके अविद्यान्धकारका नाश करता है। मकार चन्द्रबीज है, यह श्रेष्ठ जलसे पूर्ण है, यह नित्य तीनों तापोंका हरण करता है और शीतलता प्रदान करता है। पुनः रकार श्रेष्ठ वैराग्यका कारण है, अकार ज्ञानका और मकार भक्तिका कारण है।

मनुष्योंकी जिह्वापर इन अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाका निवास भी है। यथा—

जिह्वामूले स्थितो देवः सर्वतेजोमयोऽनलः।
तदग्रे भास्करश्चन्द्रस्तालुमध्ये प्रतिष्ठितः ॥

(योगियाज्ञवल्क्यः गायत्रीभाष्य)

जिह्वाके मूल भागमें सर्वतेजोमय अग्नि, उसके आगे सूर्य और तालुके मध्यमें चन्द्रमा प्रतिष्ठित हैं।

जीभसे राम-नामाराधन होनेमें जीभपर स्थित अग्नि आदि तीनों अपने-अपने परम कारण रकारादिके संयोगसे पूर्ण प्रकाशयुक्त होकर शीघ्र ही उक्त कार्य सम्पन्न कर देते हैं। तब रकार मनोमलरूप सभी शुभाशुभ संचित कर्म भस्म कर वैराग्यद्वारा प्रारब्धसे भी रक्षा करता है और क्रियमाण कर्म साथके मकारार्थसे भक्तिरूपमें परिणत हो जाते हैं। अकार अविद्यान्धकार दूर कर ज्ञानसम्पन्न कर देता है। फिर मकार विवेकपूर्ण भक्ति प्रदान कर नवधा-भक्तिद्वारा आधिदैहिक ताप, प्रेमलक्षण भक्तिद्वारा आधिभौतिक ताप और पराभक्तिद्वारा आधिदैविक ताप भी दूर करता है।

यही उपर्युक्त भवसागरके व्यष्टिरूप सातों सागरोंका सूखना है। तथा—

काल कर्म गुन सुभाव सब कें सीस तपत।
रामनाम महिमा की चरचा चले चपत ॥

(बिनय-पत्रिका १३०)

इस प्रकार भवके अङ्गभूत काल-कर्मादिकी बाधाएँ भी रामनाम-निष्ठासे नष्ट हो जाती हैं। उपर्युक्त पराभक्तिसे अन्तमें श्रीरामजीको प्राप्त हो जीव कृतार्थ हो जाता है। इन दृष्टियोंसे विचारनेपर भव-तरणके सभी प्रसंग युक्त ही हैं।

कस्मै देवाय हविषा विधेम

(लेखक—श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण', एम्० ए०)

'हम किस देवकी हविसे पूजा करें, ऋग्वेदके दशम मण्डलके १२१ सूक्तमें यह प्रश्न बार-बार उठाया गया है। कौन देवता श्रेष्ठ हैं और कौन मानवमात्रके लिये अधिक कल्याणकारी हैं, यह प्रश्न आज भी बहुत विवादका है।

विद्वानोंका एक समूह इस मतका प्रतिपादक है कि हम अग्निदेवकी ही हविसे पूजा करें। अग्निदेव वैदिक देवोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे व्यापक हैं। यह समताके अधिष्ठाता और विभिन्न दूषणोंके परिष्कर्ता हैं। सामान्यरूपसे यही जीवनकी उष्णताको कायम रखते और वस्तुओंमें रसको अर्थात् उनकी तात्त्विक सत्ताके सारको और उनके आनन्दके सारको उत्पन्न करते हैं। गोतम राहूगणने जो ऋग्वेद (मण्डल १, सूक्त ७७) के एक प्रमुख ऋषि हैं, अग्निदेवकी अनेक स्तुतियाँ[1] की हैं और उन्हें क्रियाशील जीवन-शक्ति माना है। अग्नि देवोंको विरचित करनेवाले हैं।[2] वही पृथ्वीमें चेतना, बादलोंमें बिजली और आकाशमें सूर्य हैं।[3] यास्कने अग्निको अग्रणी कहकर भी पुकारा है। विनोबाका कहना है कि अग्निकी निरुक्ति अग्रणी बहुत अंशोंमें उचित जान पड़ती है; क्योंकि अग्निसे मार्ग-दर्शन होता है। वे कहते हैं कि व्युत्पत्तिशास्त्रकी दृष्टिसे अग्नि शब्द 'अञ्ज्' (अर्थात् व्याप्त होना, प्रकाशित होना) धातुसे बना है और विभिन्न अपभ्रंश रूपोंमें कई भाषाओंमें वह प्रचलित है। अतः जो कुछ भी प्रकट हुआ है, वह सब अग्निका ही रूप है। इसके अतिरिक्त अग्नि प्रकाशित होनेके कारण ज्ञानस्वरूप भी माने गये हैं। इसलिये उनको वेदोंमें 'जातवेदस्' कहा गया है।[4] अग्निकी प्रार्थना करते हुए ऋषि कहता है, हे मार्ग-दर्शक देदीप्यमान प्रभो! विश्वमें बुने हुए सब तत्त्व तू जानता है, अतः तू हमें सरल मार्गसे उस परम आनन्दकी ओर ले जा। टेढ़ा ले जानेवाला पाप तू हमसे दूर हटा, तेरी हम फिर-फिर नम्र वाणीसे विनय करते हैं।[5] वायु और सूर्यके साथ अग्नि तैंतीसों देवता[6] के हृदय[7] बतलाये गये हैं, अतः अग्निदेव ही सर्वप्रधान हैं और इन्हींकी हविसे पूजा करना श्रेयस्कर है।

कुछ विद्वान् सूर्यको ही हवि देना श्रेष्ठ समझते हैं; क्योंकि सूर्य ही अन्य देवोंके उत्पादक हैं।[8] सूर्यका एक नाम हिरण्यपाणि भी है। एक ब्राह्मणमें इसकी चर्चा यों है कि सूर्यका हाथ नष्ट हो गया था, अतः उसके स्थानमें उसे एक सोनेका हाथ दे दिया गया। मैकडॉनेलने हिरण्यपाणिको ही हवि देना अच्छा समझा है।[9] शतपथ कहता है कि सूर्य ही सभी देवताओंके आत्मा हैं।[10] यज्ञके लिये वही स्वर्गतुल्य बतलाये गये हैं।[11] ऋग्वेदके एक सूक्त (८१, मण्डल ५) में उन्हें प्रत्येक रचनाके लिये शक्तिमान् बतलाया गया है और कहा गया है कि वही सबके पोषक हैं और जगत्को पूर्णतया

---

१. 'स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम्।' अर्थात् (नृणां नृतम्) शक्तियोंमें सबलतम और (रिशादा) विनाशकोंको समाप्त कर देनेवाला (स अग्निः) वह अग्नि (अवसा) अपनी उपस्थितिके द्वारा (गिरः) शब्दोंको और (धीतिम्) उनके विचारको (वेतु) अभिव्यक्त कर दे। (ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ७७)

'स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः।

अर्थात् (स क्रतुः) वह (अग्नि) संकल्प हैं, (स मर्यः) वह बलरूप है, (स साधुः) वह साधु है, वह पूर्णताको सिद्ध करनेवाला है, वह (मित्रः न) मित्रकी तरह (अद्भुतस्य रथी भूत) परम सत्ताका रथी है। (वही १ । ७७)

२. 'इन कृणोति देवान्', (वही, मंडल १, सूक्त ७७)

३. As a rule on earth, in the clouds as lightning, and in the upper heavens as the Sun. *Hindu gods and heroes* By Lionel D. Barnett, M. A., Litt. D, London 1922. p. 23.

४. ईशावास्यवृत्ति, विनोबा, स० सा० मं० प्रकाशन, नई दिल्ली, १६५०, अनु० श्रीकुन्दर दिवाण।

५. ईशा० १८।

६. त्रयस्त्रिंशद् देवताः, ता० ४ । ४ । ११, तै० १ । २ । २ । ५, १ । ८ । ७ । १, २ । ७ । १ । ३-४, कौ० ८ । ६, श० १२ । ६ । १ । ३७।

७. अग्निर्वायुरादित्य एतानि तानि देवानां हृदयानि।

८. सविता वै देवानां प्रसविता । श० १ । १ । ३ । ६।

९. Bhandarkar Commemoration Volume, Poona, 1917.

१०. सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा। श० १४ । ३ । २ । ९।

११. यज्ञो वै स्वः। (यजु० १ । ११)

प्रकाशित करते हैं।[12] अरविन्द कहते हैं कि सूर्य सत्यके अधिपति हैं, आलोक-प्रदाता हैं। सविताके रूपमें वह रचयिता और पूषाके रूपमें वह पोषणकर्ता हैं। उनकी किरणें अपने स्वरूपमें स्वतःप्रकाश ज्ञान (Revelation) की, अन्तःप्रेरणा (Inspiration) की, अन्तर्ज्ञान (Intuition) की, प्रकाशपूर्ण विवेक (Luminous discernment) की अतिमानस क्रियाएँ हैं और ये चारों मिलकर उस सर्वातिशायी तत्त्वकी क्रियाको बनाती हैं जिसे वेदान्त 'विज्ञान' कहता है और जिसे वेदमें 'ऋतम्' 'दिव्य' 'सत्य' कहा गया है।[13] सूर्य ही सत्यको विस्तारित करते हैं।[14] यही सत्यके प्रकाशोंसे मनको एवं विचारोंको आलोकित करते हैं। वह विप्र हैं, प्रकाशमान हैं और यह वह हैं जो अपनेपनके तथा अपनी परिस्थितिके घेरेसे घिरी हुई चेतनामेंसे व्यक्तिगत मानवीय मनको छुड़ाते हैं और उसकी सीमित गतिको विशाल कर देते हैं।[15] वही मनुष्यके सभी ज्ञान और कर्मोंके शासक हैं। विरोधी शक्तियोंसे यह विघ्नित नहीं होते और पूर्ण तौरसे शासन करते हैं; क्योंकि वह सब अभिव्यक्तियोंको जानते हैं, उनके कारणोंको समझते हैं, उनके नियम और पद्धतिसे युक्त होते हैं, उनको उचित परिणामके लिये बाध्य करते हैं।[16] अन्य सभी देव सूर्यका ही अनुगमन करते हैं और उनके प्रकाशकी शक्तिद्वारा उनकी बृहत्ताको पा लेते हैं।[17]

कुछ विद्वानोंने प्रजापतिको ही हवि देना श्रेष्ठ बतलाया है। शतपथ (७ । ४ । १ । ९) में इसका एक विचित्र आख्यान है, जिसमें बतलाया गया है कि एक ही प्रजापति हैं, उन्हें हम अपनी हवि दें। एक विद्वान्का तो कहना है कि प्रजापति ही एकमात्र देवता हैं जो आत्मामें भय अथवा संचार करते हैं। अन्य देवता इन्द्र, अग्नि, सोम, वरुण, विष्णु आदि तो उन्हींसे उद्भूत हैं, वे उन्हींकी संतान हैं। वे उनके हाथके इशारेपर कठपुतलीकी तरह नाचते हैं। अतः हम प्रजापतिको ही हवि दें।[18] वे कदाचित् सर्वश्रेष्ठ देवता हैं।[19] शुक्ल यजुर्वेद[20]में बतलाया गया है कि प्रजापतिने ही मुख अर्थात् मुख्य आग्नेय परमाणुओं[21] से देवोंको उत्पन्न किया। निरुक्त (३ । ८) ने देवोंकी उत्पत्ति प्रजापतिके द्वारा प्रकाशमय परमाणुओंसे मानी है और बहुत अंशोंमें यह उचित भी दीखता है। तांड्य ब्राह्मणमें देवता प्रजापतिके ही पुत्र बतलाये गये हैं।[22] अतः स्पष्ट है प्रजापति एक प्रधान देवता हैं, जिनकी हविसे पूजा करना श्रेयस्कर है।

अन्य देवताओंमें विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, मरुत् आदि देवता प्रमुख हैं। जिनकी हवि बहुधा दी जाती है। विद्वानोंमें इन देवताओंको लेकर भी एकमत नहीं है कि कौन देवता सबसे प्रमुख हैं। वैदिक साहित्यमें विभिन्न स्थलोंपर विभिन्न देवताकी प्रमुखता बतलायी गयी है। विष्णुकी स्तुति कई ऋचाओंमें मिलती है[23], जिससे पता चलता है कि विष्णु एक प्रमुख देवता हैं जिनकी हविसे पूजा करनी चाहिये। वह विस्तृत गतिवाले देव हैं। यह वह हैं जो कि चारों ओर गये हुए हैं जैसा कि ईश-उपनिषद्के शब्दोंमें प्रकट किया गया

१२. 'उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः'। अर्थात् (उत त्वम् एकः इत्) हे सविता देव, हे सूर्य, तू अकेला ही (प्रसवस्य ईशिषे) प्रत्येक रचना करनेके लिये शक्तिमान् है (उत देव) और हे देव ! (यामभिः) गतियोंद्वारा तू (पूषा भवति) पोषक बनता है। (उत) और तू (इदं विश्वं भुवनं) सम्भूतियोंके इस सम्पूर्ण जगत्को (विराजसि) पूर्णतया प्रकाशित करता है।

१३. वेदरहस्य, अरविन्द, द्वितीयखण्ड, अनु० आचार्य अभयदेव विद्यालंकार, जून १९४९, पृ० ६६।

१४. सत्य तातान् सूर्यः, (ऋग्वेदसंहिता, १। १५६। १२)

१५. वेदरहस्य, अरविन्द, द्वितीय खण्ड, पृ० ७०।

१६. वही, पृ० ७१।

१७. वही, पृ० ७३।

१८. **Hindu gods and heroes, p. 56.**

१९. वही, पृ० १११।

२०. तैत्तिरीय ब्राह्मण, २ । २ । ९ । ५-९ । [सः (प्रजापतिः) मुखाद्देवानसृजत]।

२१. सः (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत (श० ११ । १ । ६ । ७) (आस्येनैव) साँससे ही प्रजापतिने देवोंका सृजन किया। एकलिङ्ग भी कहते हैं, **By (the breath of) his mouth he created gods.** 'वैदिक कोष'के सम्पादक श्रीभगवद्दत्त इसे उपयुक्त नहीं समझते और कहते हैं कि प्राणोंसे देवोंकी उत्पत्ति वैदिक साहित्यमें कहीं भी नहीं बतलायी गयी है। ('वैदिक कोष', एल० द्वारकादास मेमोरियल वॉल्युम, फरवरी १९२६, पृ० ६२)

२२. (प्रजापतेः) वनीयांसः (पुत्राः) देवाः, (ता० १८ । १ । २)

२३. तदस्य प्रियमभि पाथो अश्याम (मैं विष्णुके प्रियधाम-को प्राप्त करूँ)। ('वैष्णवधर्मका विकास और विस्तार' श्रीकृष्णदत्त भारद्वाज, एम० ए०, आचार्य, शास्त्री, 'कल्याण', वर्ष १६, अङ्क ४) महस्ते विष्णोः सुमतिं भजामहे (हे विष्णु, आप महान् हैं; आपकी सुमतिका हम भजन करते हैं अर्थात् कृपाके लिये हम प्रार्थना करते हैं) (वही)

है। (स पर्यगात्) उन्होंने अपनेको तीन रूपोंमें द्रष्टा, विचारक और रचयिताके रूपमें पराचेतन आनन्दमें, मनके द्यौमें, भौतिक चेतनाकी पृथिवीमें विस्तृत कर लिया है। (त्रेधा विचक्रमाणः) । (वेद-रहस्य, पृ० १५२) कौषीतकी ब्राह्मण बतलाता है कि रुद्र ही सभी देवताओंसे बड़े और श्रेष्ठ हैं।[२४] वाल्मीकि मुनिने हरि (विष्णु) के मुखसे रुद्रकी ही श्रेष्ठता बतलायी है—हे देवश्रेष्ठ ! समुद्र-मन्थनसे निकला हुआ यह विष आपका है, क्योंकि आप देवताओंके अग्रगामी हैं।[२५] इन्द्रका स्थान देवताओंमें इसलिये महत्त्वपूर्ण है कि वह दिव्य प्रकाशके प्रदाता हैं। सायणका कहना है कि इन्द्र शोभनरूप (वाले कर्मों) के कर्ता हैं। उन्हें अपनी रक्षाके लिये प्रतिदिन हम बुलाते हैं, जैसे गोदोहकके लिये सुष्ठु दोग्ध्री गायको कोई बुलाया करता है।[२६] विश्वामित्रका पुत्र मधुछन्दस् ऋषि सोमरसकी हवि लेकर इन्द्रका ही आवाहन करता है कि वह प्रकाशमें वृद्धिगत हो सके। इन्द्र प्रकाशमय मनके अधिपति हैं। अतः मधुछन्दस् ऋषि बल और आनन्दकी वृद्धिके लिये इन्हींको बुलाता है। कौषीतकी ब्राह्मण (६ । १४) और गोपथ ब्राह्मण (उत्तर भाग, १ । ३) भी इन्द्रकी महानतापर प्रकाश डालते हैं और सभी देवताओंमें उन्हें श्रेष्ठ और बलिष्ठ बतलाते हैं।[२७] शतपथ ब्राह्मण एक जगह (४ । ३ । ५ । १) कहता है कि वास्तवमें तीन ही देवता हैं, इन्द्र, रुद्र, आदित्य[२८] (वसवो रुद्रा आदित्याः) । इन तीनोंमें प्रधान हैं इन्द्र। अतः इन्द्रको हवि देना श्रेयस्कर है। शतपथ ब्राह्मण वरुण देवताको देवताओंका राजा कहता है[२९]। अतः विष्णुको हवि देनेसे उनको हवि देना श्रेष्ठ है। वरुण 'रिशादस' हैं, सब हिंसकों या शत्रुओंके विनाश करनेवाले हैं[३०]। वह विशालता और पवित्रताकी शक्ति हैं और इसीलिये जब वह मनुष्यके अंदर सत्यकी जाग्रत् शक्तिके रूपमें आकर उपस्थित हो जाते हैं, तब उनके संस्पर्शसे वह सब जो कि दोष, पाप, बुराईके प्रवेशद्वारा स्वभावको सीमित करनेवाला और क्षति पहुँचानेवाला होता है, विनष्ट हो जाता है[३१]। मरुत देवता देवताओंके 'विश'के रूपमें बतलाये गये हैं[३२]। इनका दूसरा नाम वायुदेव भी है जिनकी स्तुति अनेक ऋचाओंमें की गयी है। मनुष्यकी सारी जीवनसूचक या वातजन्य चेष्टाएँ प्राणकी परिभाषाके अंदर आ जाती हैं और वे वायुके साम्राज्य-क्षेत्रसे सम्बन्धित हैं। अरविन्द कहते हैं कि विशेषतया वह 'इन्द्र'के साथ सम्बद्ध हैं और ऋषियोंने इन्द्रके सहकारीके रूपमें इनका आवाहन किया है[३३]। वास्तवमें उनका विचार है, इस देवको अभिव्यक्त करनी है—उन्हें उन

---

२४. रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम्। कौ० २५ । १३ 'यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः' इत्यादि श्रुति-प्रतिपादित; (लिङ्ग) महापुराण, लक्ष्मी वेंकटेश्वर मुद्रणालय, पृ० १।

२५. उवाचैनं स्मितं कृत्वा रुद्रं शूलधरं हरिः।
दैवतैर्मथ्यमाने तु तत्पूर्वं समुपस्थितम्॥
त्त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणामग्रतो हि यत्।
अग्रपूजामिह स्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभो॥
(वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड अनु० पं० चन्द्रशेखर शास्त्री, पृ० ११८)

२६. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यवि द्यवि॥

अर्थात् (सुरूप कृत्नुम्) जो पूर्ण रूपोंका निर्माता है और (गोदुहे सुदुघामिव) जो गोदोहनके लिये एक खूब दूध देनेवाली गौके समान है (ऊतये) इन्द्रको वृद्धिके लिये (द्यवि द्यवि जुहूमसि) दिन-प्रति-दिन हम पुकारते हैं। (ऋग्वेद, मंडल १, सूक्त ४ ।)

२७. इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः।

२८. तु० एते वै त्रया देवा यद्वसवो रुद्रा आदित्याः। (श० १ । ३ । ४ । १२, १ । ५ । १ । ७७, । १ । ८ । ३ । ८)

२९. वरुणो वै देवानां राजा। (श० १२ । ८ । ३ । १०)
तस्मादाहुर्विष्णुर्देवानां श्रेष्ठ इति। (वही, १४ । १ । १ । ५ ।)

३०. मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। (ऋक्० १ । २ । ७)

३१. वेदरहस्य, अरविन्द प्रथम खण्ड अनु० आचार्य अभयदेव विद्यालंकार २४ नवम्बर १९४८, पृ० ९९।

३२. मरुतो वै देवानां विशः। (ऐ० १ । ९, ता० ६ । १० । १०, १८ । १ । १४)

३३. विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये॥ अर्थात् (रायः विपः) आनन्दके अभिव्यञ्जक और (अर्यः नः) कर्मके कर्ताकी तरह, तू (अवीता होत्रा) अव्यक्त पड़ी यज्ञिय शक्तियोंको (विहि) व्यक्त कर दे; (वायो) हे वायु (चन्द्रेण रथेन) सुखमय प्रकाशके अपने रथमें चढ़कर (आयाहि) तू आ, (सुतस्य पीतये) सोमरस पीनेके लिये। (ऋग्वेद, मंडल ४, सूक्त ४८)

वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम्।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आयातु पाजसा॥

(वायो) ओ वायु, (शतं हरीणाम्) अपने सौ चमकीले घोड़ोंको (पोष्याणाम्) जो कि पोष्य हैं, जिन्हें बढ़ाया जाता है, (युवस्व) नियुक्त कर दे, (उतवा) अथवा (ते सहस्रिणः रथः) हजार [घोड़ों] से युक्त तेरा रथ (पाजसा) अपने अति वेगके साथ (आयातु) आवे।

यज्ञिय शक्तियोंको जो कि अबतक अभिव्यक्त नहीं हुई हैं, अबतकके अवचेतन अंधकारमें छिपी पड़ी हैं, सचेतन क्रियाके प्रकाशमें लाना है[34]। अग्नि और सूर्यके साथ ये देवताओंके हृदयस्वरूप माने गये हैं[35], अतः इन्हें ही हविसे पूजा करना श्रेयस्कर है।

ऐसा प्रतीत होता है कि अग्नि, सूर्य, वरुण, मरुत् आदि प्रकृतिकी विभिन्न शक्तियाँ एक ही ब्रह्मके रूप-विस्तार हैं, अतः ब्रह्मसे वे अभिन्न हैं। उन विभिन्न शक्तियोंसे न तो ब्रह्मकी पृथक्‌ता प्रतीत होती है और न ब्रह्म ही उन शक्तियोंसे रहित कोई चेतनसमूह प्रतीत होता है। श्रुतियोंमें एक स्वरसे कहा गया है—'**एकः सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**' अर्थात् सत् एक ही है' ब्रह्म, ईश्वर अथवा देव एक ही हैं, विप्रलोग इसे बहुत बतलाते हैं। अग्नि और सूर्यका तेज दो नहीं है, वह ब्रह्मका ही तेज है। प्रजापति तत्त्वतः ब्रह्मके साथ अभिन्न हैं। व्यावहारिक सौकर्यके लिये एक ही ब्रह्मके विभिन्न रूपोंकी कल्पना कर ली गयी। उनका स्रष्टारूप प्रजापति हुआ, पालकरूप विष्णु हुआ और संहारकरूप रुद्र।[36] इन तीन देवोंको अलग-अलग हवि देना वास्तवमें एक ही ब्रह्मको हवि देना है।[37]विस्तार, व्यापकता और प्रसिद्धिकी दृष्टिसे अग्निको हवि देना बतलाया गया है। अग्नि वास्तवमें ब्रह्मकी प्रकाशक शक्ति और अतुलित तेज हैं। सूर्यकी प्रकाशक शक्तिके साथ यह अभिन्न हैं। विद्युत्‌का प्रकाश और तेज अग्नि और सूर्यका ही प्रकाश और तेज है। तत्त्वकी दृष्टिसे ये सब भी एक ही ब्रह्मके प्रकाश और तेज हैं। इन्द्र, वरुण और मरुत् आदि देवता प्रमुख जरूर हैं, पर प्रसिद्धिकी दृष्टिसे उनका स्थान अग्निकी तुलनामें नगण्य है। अरविन्दने इन्द्रकी प्रमुखता अग्निकी प्रमुखताके बराबर मानी है और इसलिये कहा है, 'इन्द्र' अपने चमकीले गणों (मरुतों) सहित और आर्यके यज्ञको परिपूर्ण करनेवाले दिव्य शक्ति 'अग्नि'—ये दोनों वैदिक सम्प्रदायके सबसे महत्त्वपूर्ण देव हैं।[38] वही आगे कहते हैं कि वेदमें ऋचाएँ अग्निसे आरम्भ होती हैं और अग्निपर ही समाप्त होती हैं। यही संकल्पाग्नि, जो ज्ञानरूप भी है, मनुष्यकी अमरताको लक्ष्यकर किये जानेवाले ऊर्ध्व मुखका प्रारम्भ करनेवाला है, इसी दिव्य चेतनाको जो कि दिव्य शक्ति भी है, हम अमर्त्य सत्ताके मूलाधारके तौरपर अन्तमें पहुँचते हैं।[39] इसलिये स्पष्ट है कि इन्द्र, अग्निकी तुलनामें बहुत देरतक नहीं ठहर सकते। वास्तवमें जब हम विविध देवताओंको विविध रूपमें हविसे पूजा करते हैं, तब हमारा ध्यान उनसे प्राप्त होनेवाले फलपर विशेष रहता है। तात्पर्य यह कि जब हम रुद्रका आवाहन करते हैं, तब हमारा ध्यान ब्रह्मके संहारक रूपपर विशेष रहता है और हम सृष्टिके कलुषका, सृष्टिके विषाक्त तत्त्वोंका संहार चाहते हैं और जब हम विष्णुका आवाहन करते हैं, तब हमारा ध्यान ब्रह्मके पालकरूपपर विशेष रहता है। हम सृष्टिका रक्षण और पोषण चाहते हैं ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं होगा कि हम एक ही स्थलपर, एक ही बार विविध देवताओंकी, हविसे पूजा करें। यदि हम अपना ध्यान विविध फलोंपर केन्द्रित रक्खें। एक ही ब्रह्मसे विविध फल प्राप्त अवश्य हो सकते हैं पर उनके एक ही रूपसे नहीं। तत्त्वकी दृष्टिसे वे एक जरूर होंगे, पर रूपकी दृष्टिसे उनमें भिन्नता आ ही जायगी। वैदिक साहित्यमें देवोंको लेकर जो विवाद खड़ा किया गया है और जगह-जगहपर विभिन्न देवताको सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है उसके पीछे रहस्य यह है कि वैदिक ऋषियोंका मन विविध फलकी कामनापर केन्द्रित था। जब जहाँ जैसी आवश्यकता पड़ी, वहाँ तब वैसी कल्पना कर ली गयी। हम इसलिये आवश्यकतानुकूल अग्नि, सूर्य, प्रजापति, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, मरुत् आदि सभी देवताओंकी हविसे पूजा कर सकते हैं। यद्यपि यह पूजा एक ही ब्रह्मकी पूजा होगी। वैसे सभी देवता समय-समयपर श्रेष्ठ और मानवमात्रके लिये कल्याणकारी हैं।

---

३४. विहि होत्रा अवीता।

३५. अग्निर्वायुरादित्य एतानि तानि देवानां हृदयानि। (यजु० १६। ४६, श० ९। १। १। २३)

३६. यस्माज्जायते स ब्रह्मा, येन पाल्यते स विष्णुः, येन संह्रियते स रुद्रः। (लिं० पु० शिवतोषिणी टीका, ३। ६-७, पृ० ५)

३७. यो वै विष्णुः स वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः। एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः॥
(हरिवंशपुराण, लिं० पु० ३। ६-७ की शिवतोषिणी टीकामें उद्धृत।)

३८. वेदरहस्य, द्वि० ख० पृ० ६६।

३९. वही, पृ० ६६।

मधुर

श्रीश्यामसुन्दरकी वियोगकल्पनामें श्रीराधारानी एक दिन अत्यन्त व्याकुल हो गयीं। उनको लगा कि मैंने प्रियतम श्यामसुन्दरके अहैतुक प्रेमका सत्कार तो कभी किया ही नहीं, उसका सदा मैं तिरस्कार ही करती रही, दुत्कार देती रही। उन्होंने अपार प्रेम करके मुझे अपना सर्वस्व दे दिया, तथापि मैं 'अत्यन्त दरिद्र होकर भी मान-मदसे उसको ठुकराती रही। आज श्यामसुन्दर मुझको सदाके लिये छोड़ गये हैं, अब मैं क्या करूँ?' इन विचारोंसे ओतप्रोत होकर वे अकेली एकान्त निकुञ्जमें चली गयीं और वहाँ जाकर यह कल्पना करके कि मेरी प्यारी सखी मेरे साथ है, उससे रो-रोकर कहने लगीं—

'(प्रिय सखी!) उन्होंने (प्रियतमने) सदा ही मुझको चाहा, पर मैंने सदा उनका अपमान किया। उन्होंने नित्य मुझे मान प्रदान किया; किंतु मैं सदा अभिमान ही करती रही। उन्होंने (केवल) मेरे ही सुखके लिये (क्योंकि उनको तो सुखकी कभी कोई कमी ही नहीं) नित्य-निरन्तर मुझे अपना सारा प्रेम दिया, पर मैंने सदा उसकी अवहेलना की, मैं सदा ही दुत्कार देती रही। वे (प्रियतम) मुझको सुखी बनानेके लिये ही बार-बार मेरे पास आये, पर मैंने मीठे वचनोंसे भी उनका सत्कार नहीं किया और उन्हें निराश उदास लौटा दिया।'

नित्य उन्होंने चाहा मुझको,
मैंने सदा किया अपमान।
नित्य उन्होंने मान दिया, पर
मैंने किया सदा अभिमान॥
मेरे ही सुख-हेतु नित्य ही
दिया उन्होंने सारा प्यार।
पर मैंने अवहेला की नित,
देती रही सदा दुतकार॥
बार बार वे मुझको सुखी
बनाने, आये मेरे पास।
मधुर बोल सत्कार न करके,
लौटा दिया निराश उदास॥

'(सखी!) इतनेपर भी वे कभी न तो मुझपर रुष्ट हुए, न कभी मुझपर तनिक-सा रोष ही किया, उनके मनको स्वभावसे ही कभी भी मेरा तनिक-सा दोष दिखायी ही नहीं दिया। वे मुझे देते-देते कभी एक पल भी थके नहीं, सदा अपना सर्वस्व ही देते रहे। मैं मानिनि (मिथ्या अभिमानमें भरी रही), परंतु मैं स्वाभाविक दरिद्र-अकिञ्चन उन्हें देती ही क्या? (मेरे पास था ही क्या?)

पर वे तनिक न हुए रुष्ट, मुझपर
न कदापि किया कुछ रोष।
उनके मनको कभी न दीखा,
मेरा सहज अल्प-सा दोष॥
देते देते थके न पल भर,
देते रहे सदा सर्वस्व।
मानिनि, किंतु उन्हें क्या देती
मैं दरिद्र स्वाभाविक निःस्व॥

'(पर सखी! अब वे चले गये—अतएव) अब मैं पतित, दीन, अभागिनी दिन-रात लगातार रो रही हूँ। अब मुझे उनकी एक-एक मीठी बात याद आ रही है। मैं इसी योग्य हूँ, मुझे बस, यह उचित ही फल मिल रहा है—रोना, आँसू बहाना और आठों पहर उनकी स्मृतिमें व्याकुल रहना। पर (सखी!) मैं मर नहीं सकूँगी, कारण, मृत्यु मुझसे सदा दूर रहेगी; क्योंकि मुझपर सदा ही उनके स्मृति-सुधाका भरपूर सिंचन होता रहेगा। (मैं सदा उनके स्मृति-सुधामें डूबी रहूँगी, तब मृत्यु मेरे समीप कैसे आ सकेगी।)'

अब रो रही अभागिनि, पतिता,
दीना मैं अविरत दिन रात।
याद आ रही मुझको उनकी
एक एक अब मीठी बात॥

इसी योग्य हूँ मैं, मिलता है
उचित मुझे बस यह परिणाम।
रोना, अश्रु बहाना, व्याकुल
स्मृतिमें रहना आठों याम॥
पर मैं मर न सकूँगी, कारण
मृत्यु रहेगी मुझसे दूर।
होता नित्य रहेगा उनका
स्मरण-सुधा-सिंचन भरपूर॥

'यों कहती वे सिसक-सिसककर रोती तथा करुण विलाप करती हुई मूर्छित होकर गिरने लगीं कि स्वयं प्रियतम (श्यामसुन्दर) ने उन्हें अपनी भुजाओंमें थाम लिया। वे प्रकट हो गये और उन्होंने श्रीराधाका मधुर मनोहर मस्तक अपनी कोमल गोदमें रख लिया। (तदनन्तर) पीताम्बरसे उनका वदन (-चन्द्र) पोंछकर वे मनमें मोद भरे हुए उनको हवा करने लगे (प्रेमकी बाढ़से उनके नेत्रोंमें आँसू आ गये और) प्रियतमके प्रेमानन्द-अमृतकी कुछ बूँदें सहसा श्रीराधाजीके मुखपर गिर पड़ीं; बस (उसी समय) उन्हें चेत हो गया और अपनेको प्रियतमके अङ्कमें पाकर उनके हृदयमें आनन्दका सागर उमड़ चला। राधाजीने देखा, प्रियतम अपने करकमलोंको उनके अङ्गोंपर फेर रहे हैं और वे प्रियतम अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे प्रियाके उज्ज्वल-गौर मुखकी ओर निहार रहे हैं। नेत्रोंकी पलकें नहीं पड़ रही हैं। वे उठीं और प्रियतमके हृदयसे चिपट गयीं। (प्रिया-प्रियतम) दोनोंके नेत्रोंसे पवित्र धारा बह चली, दोनोंकी वाणी रुद्ध हो गयी, मन अमन हो गये और सारी चेष्टाएँ सहज ही रुक गयीं।'

यों कहती, रोती वह करती
सिसक सिसककर करुण विलाप।
मूर्छित हुई, लगी गिरने, ली
थाम भुजामें प्रियने आप॥
हुए प्रकट, रक्खा सिर अपनी
मधुर मनोहर कोमल गोद।
पीताम्बरसे पौंछ वदन, वे
करने लगे पवन मन-मोद॥
गिरे अचानक मुखपर, प्रियतम—
प्रेमामोद-सुधाके बिन्दु।
चेत हुआ, पा प्रिय गोदीमें,
उमड़ा उरमें आनँदसिन्धु॥
देखा, प्रियतम अपने कर-
कमलोंको फिरा रहे सब गात।
अश्रुपूर्ण दृग देख रहे प्रिय
अपलक प्यारी-मुख अवदात॥
उठीं, हृदयसे लगीं, बही
दोनोंके नेत्रोंसे शुचि धार।
वाणी रुद्ध, अमन मन, सारा
हुआ निरुद्ध सहज व्यापार॥

मधुर प्रेम तथा मधुरातिमधुर श्रीराधा-माधवकी जय जय!

एक सच्चिदानन्दमें ही मेरा नित्य निवास हो गया

हुआ सच्चिदानन्द एकमें ही अब मेरा नित्य निवास।
हटी सभी मायाकी छाया, हुआ ज्योतिका विमल विकास॥
मिटी अहंता-ममता सारी, रहा न निज-परका सम्बन्ध।
मुक्ति-कामना मिटी, खुल गये यहाँ-वहाँके सारे बन्ध॥
मेरा-तेरा हटा, मिट गया देश-कालका सब व्यवधान।
एक तत्त्व परिपूर्ण सत्य, अब रहा न कुछ भी क्षुद्र महान्॥
मिटा सभी पृथकत्व, एकमें एक हो गया सबका रूप।
द्वन्द्वरहित आनन्द छा रहा नित्य एकरस दिव्य अनूप॥

तामस त्याग

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः॥
(गीता १८ । ७)

लंबा, दुबला, तनिक साँवला शरीर, गोल मुख, कुछ भीतर गड्ढेमें धँसे मटमैले छोटे नेत्र । वे खादी पहिनते हैं; किंतु वह दूध-सी उजली कभी नहीं रहती । अपने हाथ साबुन लगानेसे जितनी सफेद हो जाय और साबुन भी चौथे-पाँचवें ही तो मिल पाता है । अवस्था कितनी है, मुझे पता नहीं; किंतु सिर, दाढ़ी और मूछोंके अधिकांश केश श्वेत हो चुके हैं । विद्वान् हैं—हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी तीन भाषाएँ जानते हैं । मैंने कभी नहीं पूछा कि कोई चौथी भाषा भी जानते हैं या नहीं । केवल खादी ही नहीं पहिनते, स्वाधीनता-संग्राममें भाग लेकर कारागारकी चहारदीवारीके भीतर भी रह आये हैं ।

उनपर रोष आना कठिन है । उन्हें देखकर दया आती है; किंतु उनसे दूर-दूर रहना ही अच्छा है । पता नहीं किस बातपर वे रुष्ट हो जायँ । जहाँ जायँगे— 'यहाँ यह होना चाहिये ! तुमलोग यह क्यों नहीं करते ? यह असावधानी, यह बेईमानी····'पता नहीं दर्जनों दोष उन्हें एक-दम एक-साथ दीख कैसे जाते हैं । दोष कहाँ नहीं होते, किसमें नहीं होते ? हमारी असावधानी, अपूर्णता और परिस्थितिजन्य विवशता— किंतु वे कुछ सुनना नहीं चाहते ।

'मैं यह सब क्षमा नहीं कर सकता । समाचारपत्रोंमें लिखूँगा । अधिकारियोंको सूचित करूँगा । किसीने न सुना तो मेरे व्याख्यान जनताको बौखला देंगे । तुम लोगोंको मैं निकलवाकर छोड़ूँगा ।' भय और चिन्ताकी कोई बात नहीं, वे इनमेंसे कुछ करनेवाले नहीं । वे यह कुछ कर नहीं सकते, यह मैं नहीं कह रहा हूँ । करनेकी योग्यता और शक्ति उनमें है; किंतु तत्परता नहीं है । आप निश्चिन्त रह सकते हैं । किंतु बोलना उनका स्वभाव है, उसे रोका नहीं जा सकता ।

जहाँ रहेंगे—रहनेकी बात तो दूर, जहाँ घंटे-दो-घंटेको पहुँच जायँगे, सबको क्षुब्ध कर देंगे । कोई व्यक्ति हल्ला मचाकर किसीकी त्रुटियोंका वर्णन आस-पास प्रारम्भ कर दे, एक बार वातावरणको प्रतिकूल तो बना ही देता है । आप अपनी ऐसी आलोचना पसंद करेंगे ?

'यहाँ यह होना चाहिये ! यहाँ ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये ! यह बात एकदम नहीं होनी चाहिये । यह काम यहाँ न होकर वहाँ होना चाहिये । यह आदमी इस कार्यसे अविलम्ब हटा दिया जाना चाहिये ।' आप पूछेंगे, इसकी अपेक्षा उन्हें नहीं । वे अपने सुझाव देंगे ही और इतने उच्च स्वरमें देंगे कि आपके साथ दस आदमी और सुन लेंगे । उनके सुझावोंको चरितार्थ करनेकी क्षमता तो कदाचित् ही किसीमें निकले ।

बड़े त्यागी हैं वे । कोई संग्रह नहीं उनके पास । शरीरपर पूरे वस्त्रतक नहीं । एकाध पुस्तक कदाचित् कभी रख लेते हैं, कितने दिन रहेगी । पैसा है नहीं, मिल जाय तो रह नहीं पाता । अमुक वस्तु प्राप्त ही हो जाय, ऐसा भी कोई आग्रह नहीं दीखा उनमें । किसीपर लगातार कई दिन रुष्ट रहते हों सो भी नहीं । उनका क्रोध क्षणोंका भले न होता हो, बद्धमूल भी नहीं होता ।

निद्रा उन्हें आती नहीं। क्यों नहीं आती, कह पाना मेरे लिये कठिन है। यद्यपि मैं साधारण चिकित्सक हूँ—मैंने चेष्टा की और एकाध दिन निद्रा उन्हें आ भी गयी; किंतु वे तो इस तमोगुणको स्वीकार ही नहीं करना चाहते। निद्राको समयका दुरुपयोग मानते हैं।

कोई साधुवेश उन्होंने स्वीकार नहीं किया है। गृहस्थ उन्हें आप कह नहीं सकते; क्योंकि गृहका त्याग कर दिया है उन्होंने। पत्नीकी मृत्युके पश्चात् घर उन्हें रहनेके उपयुक्त नहीं जान पड़ा। अब दस-पाँच दिन या महीने दो महीने एक स्थानमें, फिर दूसरे स्थानमें—घूमते ही अवस्था व्यतीत हो रही है। अच्छा ही है यह उनके लिये। वे कहीं जमकर रहने लगें, उस स्थानके दूसरे लोगोंको निश्चय बाध्य कर देंगे कि वे घर-द्वार छोड़कर भाग खड़े हों।

सुना है, पढ़ा भी है कि त्यागसे शान्ति प्राप्त होती है। राग अशान्तिका हेतु है, यह निर्विवाद तथ्य है। जब हेतु नहीं रहा, अशान्ति क्यों रहनी चाहिये? किंतु सच मानिये, इतना अशान्त मनुष्य मैंने नहीं देखा। स्वयं रात-दिन अशान्त और जहाँ रहे, दूसरे आस-पासके लोगोंकी शान्तिको फटकारकर दूर भगा देनेवाला।

निरन्तर व्यग्र, निरन्तर दुखी व्यक्ति आपने नहीं देखा होगा। उनके मुखपर भी कभी-कभी प्रसन्नता दीखती है; किंतु बहुत कम। उनके क्रोधसे भी भयंकर है उनका रुदन। वे किस बातपर क्रोध करेंगे और किसपर फूट-फूटकर रोते हुए अपने भाग्यको, अपनी असमर्थताको कोसने लगेंगे, कहना कठिन है। मुझे उनपर दया आती है; किंतु मैं उनसे दूर-दूर रहना ही पसंद करता हूँ।

× × ×

'आपने घर छोड़ा तो कोई आपपर आश्रित नहीं था?' एक दिन मैंने उनसे पूछा। वे प्रायः आ बैठते हैं और इनकी-उनकी इतनी त्रुटियाँ, इतने अपराध-विवरण उनके समीप सदा रहते हैं कि आप रात्रि-जागरण पसंद कर लें तो भी उनकी सामग्री समाप्त नहीं होगी। मैं अल्पप्राण मनुष्य हूँ। बहुत थोड़ा धैर्य, बहुत कम सुनते रहनेकी शक्ति मुझमें है। उन्हें रोकने-टोकनेका अर्थ है उनके रोष या रुदनको आमन्त्रण देना। इसलिये मैं अपनी ओरसे कोई चर्चा चलानेका प्रयत्न करता हूँ और यदि इसमें असफल हो गया, नेत्र बंद करके बिना निद्राके सो जानेका अभिनय एकमात्र मेरा सहारा है।

'छोटे दो बच्चे थे।' उन्होंने इतनी तटस्थतासे उत्तर दिया, मानो वे बच्चे उनके नहीं, किसी मनुष्यके भी नहीं, बकरी या मुर्गीके उपेक्षणीय शिशु थे।

'उनका पालन-शिक्षण..........।'

'आप इन व्यर्थ बातोंकी चिन्ता क्यों करते हैं!' मुझे बीचमें ही उन्होंने रोक दिया—'सब अपना-अपना प्रारब्ध लेकर आते हैं। अपने भाग्यका भोग उन्हें भोगना चाहिये। उनके लिये गृहमें बँधे रहनेको तो मनुष्यका जन्म नहीं मिला है।'

'मनुष्यका जन्म किसलिये मिला है।' यह प्रश्न करनेका साहस मुझमें नहीं था! जानता था कि इसके उत्तरमें वे जो प्रवचन प्रारम्भ करेंगे, वह कई घंटे अविराम चलता रहेगा। वे ऐसे वक्ता नहीं जो बोलते-बोलते थक जाते हैं। सामान्य वक्तृत्वकी बात तो दूर, किसीको कोसनेमें भी उन्हें बीचमें पानी नहीं पीना पड़ता।

'मनुष्य-जन्म किस प्रकार सफल कर रहे हैं।' मुझे पागल कुत्तेने नहीं काटा था कि मैं उनसे इस प्रकार पूछकर उनके क्रोधका पात्र बनता। क्रोध यदि उस समय उनको न आता—कोई सौभाग्यकी बात नहीं होती। तब वे फूट-फूटकर क्रन्दन करने लगते और उनका रुदन मुझे उनके क्रोधसे अधिक कष्टदायी लगता है।

'आप नियमित संध्या करते हैं?' जब भी वे मेरे

पास आ बैठते हैं, उनकी अविराम वाग्धाराको अटकानेके लिये मुझे अपने मस्तिष्कपर दबाव डालना पड़ता है। किंतु यह बात आपसे कह दी, उनसे मत कहिये। वे निजी प्रश्नोंसे कतराते हैं। जिन प्रश्नोंके उत्तरमें उनके पिछले जीवनका विवरण हो, उनके कर्तव्याकर्तव्यकी पूछपाछ हो, उन प्रश्नोंका उत्तर वे दो शब्दोंमें देना चाहते हैं। जब देखते हैं कि आज उनसे ऐसे ही प्रश्न पूछे जायँगे, उन्हें कोई अत्यावश्यक कार्य स्मरण आ जाता है। आप समझ गये होंगे कि मैं उनसे प्रायः कैसी बातें पूछता होऊँगा।

'मैं इन कर्मकाण्डोंको महत्त्व नहीं देता।' उनके स्वरमें ऊबनेका भाव स्पष्ट था। वे ब्राह्मण हैं, पर बड़ी-सी चुटिया रखते नहीं; शिखाशून्य भी आप उन्हें नहीं कह सकते। सिरके केश छोटे रखते हैं, अतः शिखाके स्थानपर जो दस-पाँच कुछ बड़े बाल हैं, वे उन्हें हिंदू बताते हैं। वैसे जनेऊ खादीके सूतका खूब मोटा पहिनते हैं वे।

'मैंने एक आदमीको अभी मिलनेका वचन दिया है।' वे उठ खड़े हुए। मुझे तो इसकी आशा ही थी। मैं उनसे निजी प्रश्न न करूँ, उनको कभी अपना किसीको दिया वचन स्मरण नहीं आ सकता।

× × ×

'तुम दूसरोंके दोष देखनेमें जितना समय देते हो, उतना यदि भजन करनेमें लगाओ!' उस दिन मैं एक वीतराग महात्माके पास गया था। देखा, वे वहाँ बैठे लोगोंमें सबसे आगे बैठे हैं। महात्मा उनको समझा रहे हैं—'तुम्हें भी शान्ति मिले और दूसरोंको भी तुमसे उद्वेग न हो।'

'मैं दूसरोंके दोष देखता हूँ और आप, सबके गुण-ही-गुण देखते हैं! मुझमें कोई गुण नहीं दीखता आपको।' वे बिगड़ उठे—'लोग मनमानी करते रहें, पर किसीको बोलना नहीं चाहिये। जनताके पैसे और सार्वजनिक स्थानोंका जो दुरुपयोग लोग कर रहे हैं, मैं उसे चलने नहीं दे सकता। जनता-जनार्दनकी सेवा भगवान्का भजन नहीं है, यह कहनेवाला शास्त्रोंका तात्पर्य तनिक भी नहीं समझता।'

वे खड़े हो गये आवेशके मारे और बोलते रहे। वहाँ बैठे लोगोंमेंसे एक समझदार सज्जन उठे। बड़ी नम्रतापूर्वक वे उन्हें साथ लेकर चले गये एक ओर। सबका समय नष्ट न हो, सबके सत्संगमें बाधा न पड़े, इसलिये उन्होंने अपने सत्संगका समय उनको पृथक् ले जानेमें लगाया।

'त्यागसे शान्ति मिलनी चाहिये।' मुझे जब अवसर मिला, मैंने महात्माजीसे पूछा—'इनमें न संग्रहकी प्रवृत्ति है, न वस्तुओंका मोह दीखता है। किंतु इतना अशान्त पुरुष............।'

'नारायण, त्याग सात्त्विक हो तो उससे निश्चय शान्ति प्राप्त होती है।' महात्माने मुझे बताया—परंतु राजस त्याग शान्ति नहीं देता। वह तो निष्फल ही जाता है। त्याग राजस न होकर यदि तामस हो जाय तो अशान्तिका उद्भव बन जाता है।'

'त्यागसे अशान्ति उत्पन्न होती है?' मैंने आश्चर्यके साथ पूछा। आपको भी यह बात सरलतासे गले उतरती नहीं जान पड़ेगी।

'नारायण, तुम यदि स्नानका त्याग कर दो अथवा अपने वस्त्रोंको स्वच्छ करनेका प्रयत्न त्याग दो, महात्माने स्नेहभरे स्वरमें समझाया—'क्या होगा, जानते हो?'

'वस्त्र मैले हो जायँगे, देह मैलसे ढक जायगा।' मुझे स्वीकार करना पड़ा—'दुर्गन्धि आयेगी और रोग आ सकता है।'

'इस त्यागने तुमको और तुम्हारे समीपस्थोंको क्या दिया—शान्ति या अशान्ति?' महात्माका प्रश्न सीधा था। उत्तर बिना दिये ही दे दिया गया मुझे।

'नियत कर्तव्यका त्याग किसी अवस्थामें उचित

नहीं है। अज्ञान या कुतर्कवश कोई इसका त्याग कर ही दे' साधु कह रहे थे—'इस तामस त्यागसे उसके मनका मल बढ़ता जायगा। कर्तव्यका पालन तो चित्तकी नित्य स्वच्छताका हेतु है। वह स्वच्छता अवरुद्ध हुई, मल एकत्र होने लगा। जहाँ मल होगा, वहाँ दुर्गन्धि और रोग होंगे। स्वयं तथा दूसरोंको भी अशान्ति तथा कष्टके अतिरिक्त और क्या मिलेंगे, ऐसी स्थितिमें।'

वे त्यागी हैं—बेचारे······· किंतु उन्हें समझानेका साहस मुझमें नहीं है। आपमेंसे यदि कोई साहस कर सकते हों··········।

परिपूर्णता

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

वैदिक साहित्यमें स्वाध्यायका बड़ा महत्त्व है। आपस्तम्ब धर्मसूत्रमें स्वाध्यायको ही तप कहा है—

'तपः स्वाध्यायम् इति ब्राह्मणम्।'

(आप० ध० १। ४। १२। १)

'तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी' (१। १) आदि।

वाल्मीकीय रामायणके अधिकांश स्थलोंमें टीकाकारोंने तपका अर्थ स्वाध्याय किया है। मनुस्मृति (२। १६७) तथा शतपथ ब्राह्मण (११। ५। ७। ४) में अभ्यक्त, अलंकृत, स्रग्वी (मालाधारी शौकीन) एवं लेटे ब्राह्मणके स्वाध्यायको भी तप कहा है—

'यदि ह वाभ्यक्तः, अलंकृतः सुहितः सुखे शयने शयानः स्वाध्यायमधीते आहैव स नखाग्रेभ्यस्तप्यते।'

अत्रिस्मृति (३। ४ तथा भविष्यपुराण १। ४ १३४) में भी यही बात कही गयी है। शिवपुराणका भी कुछ ऐसा ही कथन है—

तपस्तपति योऽरण्ये वन्यमूलफलाशनः।
योऽधीते ऋचमेकां हि फलं स्यात्तत्समं मुने॥

(उमासंहिता १३। १)

महाभारत (शान्तिपर्व, ६०। १२, २३८। १३), बृहद्विष्णुस्मृति (५५। १८), बृहत्पाराशरस्मृति (४। ६०) तथा भविष्यपुराण (१। ४। २६-२७) आदिमें—

स्वाध्यायेन हि संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते॥

—यह वचन मिलता है, जिसमें स्वाध्यायमात्रसे ही ब्राह्मणको सिद्धि लाभ करनेकी बात बतलायी गयी है। स्वाध्यायसे वेद-पुराणका पाठ तथा नाम-मन्त्र-जप भी गृहीत है। 'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः' आदि योगसूत्रके व्याख्याताओंने ऐसा ही अर्थ किया है। इनमें पुराणोंको ब्राह्मणका हृदय बतलाया है। वेद दक्षिण तथा स्मृतियाँ वाम नेत्र हैं। एक आँख न होने या अन्धा होनेकी अपेक्षा भी हृदयहीन होना जघन्य बतलाया गया है—

पुराणहीनाद्धृच्छून्यात्काणावन्धौ हि तौ वरौ।

(काशीखण्ड ४)

वेदके पूरक होने, अत्यन्त प्राचीन होने, अपनेआपमें परिपूर्ण होनेसे ही ये 'पुराण' हैं। जैसे सूर्य-चन्द्रमाके बिना जगत् निरालोक होता है, वह कुछ देख नहीं सकता, वैसे ही पुराण-ज्ञानके बिना व्यक्तिको यथार्थ साधु-दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती —

जगद्यथा निरालोकं जायतेऽशशिभास्करम्।
विना तथा पुराणं ह्यध्येयमस्मान्मुने सदा॥

(शिवपुराण, उमासं० १३। ३)

जब योगीको योगसाधनाद्वारा ज्ञान प्राप्त न हो तो उसे पुराणोंका आश्रय लेना चाहिये; क्योंकि पुराण परम योगियोंके हृदयका ही सार है। भला व्यास,

शुकदेव, वसिष्ठ, नारद आदिसे बढ़कर योगाङ्गोंका सम्यक् ज्ञाता योगी कौन होगा ? उनके ही सारभूत उपदेशामृत इन पुराणोंमें भरे हैं। इसलिये परम श्रेष्ठ पवित्र ज्ञानकी प्राप्तिके लिये तथा नामात्मक, चरित्रात्मक होनेसे पुराणोंका स्वाध्याय इष्टदेवताका प्रापक एवं बड़ा ही लाभकर है।

ज्ञानावाप्तिर्यदा न स्याद् योगमार्गान्महेश्वरि।
अध्येतव्यं हि पौराणं शास्त्रं श्रोतव्यमेव च॥

(शिवपुराण)

कलियुगमें तो पुराणपरिचर्या ही वास्तविक योग-सिद्धि है। जो स्वभाव-दोषी हैं, उनकी बात जाने दीजिये; किंतु जिन्हें वस्तुतः परलोक एवं धर्मसे भय है, जिनके मनमें भगवान्‌में यथार्थ श्रद्धा है, उनके श्रेयके लिये पुराणश्रवणसे सुगम अन्य कोई उपाय नहीं है—

विशेषतः कलौ व्यास पुराणश्रवणादृते।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिध्यानपरः स्मृतः॥

(उमा० १३। ३१)

पद्मपुराण पातालखण्डमें पुराणको साक्षात् 'भगवद्विग्रह' कहा है। यह सर्वथा सत्य ही है। पुराणोंमें कालक्रमसे कहीं कुछ अनावश्यक पाठभेद या अवाञ्छनीय अंश वाममार्गके विद्वानोंने मिलाये हों, यह सम्भव है; अन्यथा स्वरूपतः पुराण पवित्रताकी चरम सीमा हैं। इनका ज्ञान यदि आत्मसात् हो जाय तो निश्चय ही बेड़ा पार है—पूर्णताकी प्राप्ति दूर नहीं।

पुराणोंके अनुसार इस संसारमें भगवान्‌के अतिरिक्त अन्य सब कुछ अपूर्ण है। केवल प्रभु ही परिपूर्ण हैं। श्रुतिका भी कथन है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

(बृहदारण्यक)

अर्थात् वह परम विभु परमात्मा सर्वथा पूर्ण है, उसका अंश-भूत प्रतिविम्ब यह विश्व भी उसके रूपमें पूर्ण है। वह सभी देशकालोंमें सर्वथा परिपूर्ण है। और उसमेंसे इस विश्वके निकल जानेपर भी उसकी परिपूर्णता उसी प्रकार अक्षुण्ण है। यहाँ आकर जो तन-मनसे उनका निरन्तर भजन करते हैं, उनमें भी उनका लक्षण प्रकट हो जाता है। अन्तमें उनमें लीन होकर उन्हींका स्वरूप पाकर जीव भी परिपूर्ण हो जाता है। इसीलिये 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्' का उपदेश है। ध्रुवने भगवान्‌की आराधनासे शान्त स्थिर अनुपम पद पाया। सारा ज्योतिर्मण्डल उनकी परिक्रमा करता है। ब्रह्मपुराणके २४ वें तथा विष्णु-पुराणके द्वितीय अंशके ९ वें अध्यायमें ध्रुवके विषयमें लिखा है कि ज्यों-ज्यों ध्रुव अपने स्थानपर घूमता है, सारा विश्व उसी प्रकार घूमता है—सूर्यादि ग्रह भी उसी प्रकार घूमते हैं—

सैष भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान्।
भ्रमन्तमनु तं यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत्॥

यह उत्कृष्ट स्थिति ध्रुवको जगन्नियन्ता दुर्ज्ञेय श्री-नारायणकी आराधनासे ही मिली है—

उत्तानपादपुत्रस्तु तमाराध्य जगत्पतिम्।
स ताराशिशुमारस्य ध्रुवः पुच्छे व्यवस्थितः॥

गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥

(राम० बाल०)

गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन, ध्रुव अबिचल कबहूँ न टरै।

(बिनयपत्रिका १३७। २)

चन्द्रमा दो दिन ६ घंटे; सूर्य, बुध, शुक्र प्रायः एक मास, गुरु एक वर्ष और शनि ढाई वर्षमें एक राशिपर भ्रमण करते हैं। इसी परम्परासे स्थैर्यको प्राप्त करते हुए सतर्षिगण ढाई सौ वर्षोंमें एक राशिपर चलते हैं—

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते ह्युदितौ दिवि।
तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि॥
तेन सप्तर्षयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्।

(विष्णुपुराण ४। २४। १०५-१०६, भागवत १२। २)

किंतु ध्रुव सर्वोच्च लोकोत्तर स्थितिको प्राप्त इन राशिनक्षत्रके गमनागमनसे मुक्त है; क्योंकि वह सबके केन्द्रमें स्थित है । वह वैष्णवलोकके द्वारपर सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त किये है । वह जिधर है, वही उत्तर है । उत्तरायण काल ही वैष्णवादि लोकोंको प्राप्त करानेवाला होता है । वैष्णवलोक ध्रुवसे भी ऊपर है । यह सब स्थिति देखते-सुनते आनन्द आता है । 'कल्याण' के ११ वें वर्षमें महात्मा श्रीबालकरामजी विनायकने ध्रुवदर्शनपूर्वक भजनका अनोखा चमत्कार लिखा था । कहा जाता है—ग्रहोंके प्रकोपसे सप्तर्षिगण और ध्रुवादि संसारकी रक्षा करते हैं । अतः इस समय जब कि अष्ट ग्रहोंका योग होने जा रहा है, ध्रुव विशेष श्रद्धेय हैं और उनके आराध्य श्रीमन्नारायण परम शरण्य हैं ।

भगवान्‌के ही सदृश भगवत्प्रेम भी परिपूर्ण है । प्राणी यदि किसी प्रकार सर्वात्मना विश्वको भुलाकर भगवान्‌का सच्चा प्रेम प्राप्त कर सके तो उसे कोई क्लेश नहीं हो सकता और सहज ही परिपूर्ण सुखकी अनुभूति हो सकती है । गीता इसे 'ब्रह्मसंस्पर्श' का 'अत्यन्त सुख' कहकर सर्वोत्तम पदार्थ बतलाती है—

'सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥'

उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

[गताङ्कसे आगे]

गुप्तकाशीसे हमारा पहला मुकाम फाटाचट्टीपर हुआ । गुप्तकाशीसे लगभग एक मील चलनेपर नाला चट्टी मिलती है । कहते हैं राजा नलने यहाँ भगवान्‌की आराधना की थी । यहाँ भगवती ललितादेवीका मन्दिर है जिसमें कुछ अन्य मूर्तियाँ हैं । पत्थरका एक स्तूप भी है जो गढ़वालका एक-मात्र बौद्ध-स्तूप है । नालाके बाद सवा मील बाद मेत चट्टी आती है । यहाँ १८ प्राचीन मन्दिर हैं । मेतके बाद डेढ़ मील बाद व्यूंग (व्यूंगमला) चट्टी पड़ती है । यहाँ लकड़ीके सुन्दर बर्तन बनते हैं । एक प्रपात है, जिसे नियन्त्रित कर मशीनें चलायी जाती हैं । व्यूंगमलासे कोई एक मील चढ़ाई चढ़कर दो मीलपर मैखंडा या झूला चट्टी आती है । इसे ही महेश मन्दिनी कहते हैं । यहाँ महिषासुरमर्दिनीका मन्दिर और हिंडोला है ।

मार्गमें पड़े इस स्थानपर यद्यपि हमारा मुकाम नहीं था, किंतु थोड़ी देरको हम दम लेने (हुक्का-चिलम नहीं, वरं विश्राम-हेतु) ठहरे । स्कन्दपुराणमें उल्लेख हुआ है कि भगवतीने यहींपर महिषासुरका वध किया था । निकट ही एक मन्दिर है, जिसके भीतर रुहेलोंद्वारा खण्डित की गयी कुछ मूर्तियाँ हैं । इसमें शिव और गौरीकी दो मूर्तियाँ सुन्दर हैं । मूर्ति-भञ्जकों-की निष्ठुर चोटोंसे इनके अङ्ग भले ही भंग हो गये हों; किंतु कलाकारकी जो आत्मा उसकी कृतिमें वास करती है, उसके यहाँ इन भग्नमूर्तियोंमें भी सहज दर्शन हो जाते हैं । यहाँ दो लौहखम्भोंपर एक झूला पड़ा है जिसपर झूलनेका बड़ा माहात्म्य बताते हैं । हमारे साथी भी इस झूलेपर झूले । स्थान सुन्दर है । फाटा एक बड़ी चट्टी है । यहाँ जमदग्नि ऋषिका आश्रम है, जहाँ परशुरामजीने अपनी माता रेणुकाका सिर काटा था । यहींसे रेणुका नदी बही है । दूरसे इस आश्रमवाले गिरिशृंगके दर्शनकर हमें महर्षि जमदग्नि, रेणुका और भगवान् परशुराम-से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक कथाएँ याद आयीं और इन कथाओंको एक नया रूप देनेवाला याद आया श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीका 'भगवान् परशुराम' उपन्यास । फाटामें एक पूर्व-माध्यमिक हिंदी-संस्कृत विद्यालय और राष्ट्रीय वाचनालय चलाये जा रहे हैं जो यहाँकी जनताकी अच्छी सेवा कर रहे हैं । फाटा पहुँचकर हम ५२५० फुटकी ऊँचाईपर आ गये थे । इस ऊँचाईके कारण मौसममें काफी ठंडक थी और इस ठंडकके साथ ही यहाँके प्राकृतिक दृश्योंसे हमारा जी भी अब खूब जुड़ा रहा था । फाटा चट्टीके समीप ही बह रहे एक बड़े निर्झरमें हमने स्नान किये और खा-पीकर हम अगले मुकाम रामपुरके लिये चल पड़े और संध्या होते-होते रामपुरमें अपना पड़ाव डाल दिया । फाटासे रामपुरकी दूरी केवल ५ मील है । आज हम केदारनाथ-मार्गमें गुप्तकाशीके बाद प्रथम दिन ही सर्वाधिक चले । हमारी आजकी मंजिल १२ मीलकी थी ।

रामपुरमें रात्रि-मुकामकर दूसरे दिन प्रातःकाल त्रियुगीनारायणके लिये रवाना हुए। रामपुरसे त्रियुगीनारायण साढ़े चार मील हैं। डेढ़ मील केदारनाथके ही रास्तेपर चलकर फिर बायीं ओर तीन मीलका चढ़ाईवाला रास्ता नापना पड़ता है।

त्रियुगीनारायण एक प्राचीन स्थल है और इसका तीर्थकी दृष्टिसे बड़ा महत्त्व है। भगवान् त्रियुगीनारायणका मन्दिर है। मन्दिरके निकट एक चतुष्कोण कुण्ड है, जिसे 'ब्रह्मकुण्ड' कहा जाता है। इसके पास ही एक छोटा 'रुद्रकुण्ड' है, रुद्रकुण्डके निकट गोलाकार 'विष्णुकुण्ड' है। ब्रह्मकुण्ड और रुद्रकुण्डमें लोग स्नान करते हैं। विष्णुकुण्डका जल पीते हैं। निकट ही सरस्वतीकुण्ड है, इसमें पंडे लोग यात्रियोंको तर्पण कराते हैं। चारों कुण्डोंमें झरनेका जल आता है, जो ब्रह्मकुण्डसे बाहर निकल जाता है।

हम सभीने ब्रह्मकुण्डमें स्नान किये और भगवान् त्रियुगीनारायणके मन्दिरमें दर्शनोंको गये। नारायणकी मूर्ति धातुकी बनी हुई है। मन्दिरमें कुछ अन्य लक्ष्मी, सरस्वती और अन्नपूर्णा आदिकी भी मूर्तियाँ है। मन्दिरके आगे एक और चतुष्कोण कुण्ड है, जिसमें निरन्तर अग्नि जलती रहती है। कहते हैं शिव-पार्वतीका पाणिग्रहण इसी स्थानपर हुआ था और यह कुण्ड ही वह मखवेदिका है, जिसकी साक्षीमें भगवान् शङ्करने पार्वतीका वरण किया था। अनेक यात्री इस मख-वेदिकामें लकड़ी मोल लेकर डालते हैं, गोविन्ददासने स्नानान्तर संध्यावन्दन किया और सरस्वतीकुण्डमें सपत्नीक पितृ-तर्पण भी किया। इसके उपरान्त मन्दिरमें आरती की और मख-वेदिकामें हवन कर अपनी ओरसे एक लकड़ी अर्पित की। हमें यहाँ यह देखकर बड़ा संतोष हुआ कि हवन करानेवाले ब्राह्मणोंने संस्कृतके मन्त्रोंका अत्यन्त शुद्ध उच्चारण कर हमसे हवन कराया। हवनके बाद उन्होंने हमें हिंदीमें जो आशीर्वाद दिया, उसे सुनकर तो हमें कुछ हँसी भी आ गयी। उन्होंने कहा—आपके पाप इस अग्निके सदृश जलेंगे और प्रताप इस अग्निके प्रकाशके सदृश बढ़ेगा। त्रियुगीनारायणका यह तीर्थ सचमुच अपनी एक विशेषता रखता है। वहाँ संक्षेपमें स्नान, संध्या, तर्पण, अग्निहोत्रादि सभी कुछ हो जाता है। त्रियुगीनारायणका मन्दिर एक विशिष्ट स्थापत्यकलाके अनुसार बना है। गुप्तकाशी, त्रियुगीनारायण, केदारनाथ और ऊखीमठ चारों स्थानोंके मन्दिर इसी स्थापत्यकलाके हैं।

त्रियुगीनारायण केदारनाथ-यात्राके मार्गमें न होते हुए भी मार्गके निकट पड़नेवाले एक प्रमुख तीर्थकी दृष्टिसे हमारा कुछ देरके लिये एक पड़ावमात्र था। आजका हमारा मुकाम यहाँसे सवा छः मील आगे गौरीकुण्डपर था। त्रियुगीनारायणसे केदारनाथ केवल सवा तेरह मील रह जाते हैं।

त्रियुगीनारायणमें एक दुर्घटना हो गयी। जब हमलोग धार्मिक कृत्योंसे निबटकर त्रियुगीनारायणसे विदा हो आगेका मार्ग पकड़ने अपने डंडी-कंडीवालों और भार-वाहकोंके निकट आये तो हमने एक अजीब दृश्य देखा। काफी लोग यहाँ एकत्रित थे, खूब गालीगलौज हो-हल्ला हो रहा था और मार-धाड़ मची थी। पहले तो हमें यकायक कुछ समझमें आया नहीं, पर ज्यों ही अपने साथियों—इन डंडीवालोंके एक-दो चेहरे हमने पहचाने, समझमें आ गया, अरे, ये तो हमारे डंडीवाले हैं। झटपट आगे बढ़े और इस युद्धके मध्यस्थ बन गये। कोई किसीकी सुनता नहीं था। बड़ी कठिनतासे जब मामला मार-पीटको छोड़ वाक्-युद्धपर आया, तब पता चला कि हमारे डंडीवालेने शरारत की, दूकानदारको गाली दे दी और जब डंडीवालेके बयान लिये तो मालूम हुआ दूकानदारने उद्दण्डता की। दोनों ही एक दूसरेपर दोषारोपण करते थे। गोविन्ददासने दूकानदारको डाँटा तो वह हाथ-पैर जोड़ने लगा। गोविन्ददासके मतसे उनके दलके मजदूर पिट गये, यह बहुत अनुचित बात हुई। किंतु, जब सारे मामलेकी तहकीकात की गयी तो मालूम हुआ कि कसूर डंडीवालेका ही था। अतः जब गोविन्ददासको इस स्थितिकी जानकारी मिली, तब उन्हें संतोष हुआ। फिर हमलोगोंने कहा—दोनों ही ओरसे उद्दण्डता हुई और इसीलिये दोनों ही पिटे। किसीने कम किसीने ज्यादा मार खायी। यदि एक समझदार होता तो कदाचित् यह स्थिति न आती। हमलोग तो बटोही थे, व्यर्थकी बातोंमें कहाँ उलझनेवाले थे। अतः राह चलते गरमा-गरमीका एक दृश्य देख फिर अपनी मंजिलपर चल पड़े।

त्रियुगीनारायणसे सोनप्रयाग (सोमद्वार) ढाई मील-पर है। यहाँ मन्दाकिनी और वासुकी गङ्गाका संगम होता है। सोनप्रयागमें मन्दाकिनीका नीर श्वेत और वासुकी गङ्गाका हरित दीख पड़ता है। वासुकीपर एक लोहेका लंबा पुल है। यहाँसे बारह मीलपर वासुकी तालाब है। सोनप्रयाग होते हुए हमलोग अपराह्नमें गौरीकुण्ड पहुँचे।

गौरीकुण्डकी ऊँचाई ६५०० फुट है । गौरीकुण्ड पहुँचनेके कुछ पूर्व विनायकद्वार नामक एक स्थानपर सिर कटे गणेशकी मूर्तिके दाहिनी ओर पार्वतीजी और बायीं ओर एक शिवलिङ्ग स्थापित हैं । मूर्तिके संरक्षकने मूर्तिपर कपड़ा डाल रक्खा था । वह यात्रियोंको भेंट चढ़ानेको कहता और जो लोग मूर्तिके सम्बन्धमें जिज्ञासा प्रकट करते, उन्हें वह एक लंबी कथा सुनाता । स्कन्द-पुराण (केदारखण्ड प्रथम भाग ४२ वाँ अध्याय) में इस सम्बन्धमें कथा आयी है । पार्वतीजीने स्नान करते समय गणेशजीको अपने अङ्गरागसे बनाकर द्वारपर बैठा दिया और शिवजीने उनका सिर काट डाला । बादमें महादेवजीने हाथीका सिर जोड़कर गणेशजीको जिला दिया, तभीसे ये गजानन हो गये । शिवपुराण (ज्ञान-संहिता ३२ वाँ अध्याय) में इसी तरहकी एक कथा आयी है । एक समय पार्वतीजी स्नान कर रही थीं । गणेश द्वारपर स्थित था । शिवजीने ज्यों ही अंदर जाना चाहा कि गणेशने उन्हें टोक दिया । इससे कुपित हो शिवजीने गणेशका सिर काट डाला और भीतर चले गये । पार्वतीजीको जब यह बात ज्ञात हुई तो क्रुद्ध हो उन्होंने अपने प्रतापसे सहस्रों नन्दी उत्पन्न कर दिये और शङ्करजीसे युद्ध करनेको कहा । पार्वतीके कोपसे प्रभूत ये शक्तियाँ कुपित हो देवताओंको पकड़-पकड़कर अपने मुखमें डालने लगीं । भयभीत हो ब्रह्मादिसमेत सभी देवता पार्वतीकी अभय-हेतु स्तुति करने लगे । पार्वतीने कहा 'मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह सर्वमान्य हो, सभी देवोंद्वारा पूजा जाने लगे तभी मेरी ये शक्तियाँ शान्त होंगी ।' सभी देवता तत्क्षण उस शरीरका विधिवत् पूजन कर चल पड़े । आगे मार्गमें उन्हें एकदाँतवाला हाथी मिला, देवताओंने उसका सिर काटकर बालकके शरीरसे जोड़ दिया, जिससे गणेशजी जीवित हो गये और उनकी पूजा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव तीनोंने की ।

कुछ लोगोंका यह भी मत है कि दो सौ वर्ष पहले रुहेलोंने जब इस क्षेत्रमें लूट-मार की तो उन्हींके द्वारा ये मूर्तियाँ खण्डित की गयीं ।

गौरीकुण्डमें हमारे ठहरनेकी व्यवस्था जिस स्थानपर हुई, उसके निकट ही दो चौकोर कुण्ड थे । एक गरम जलका, दूसरा ठंडे जलका । निकट ही मन्दाकिनी बह रही थीं । गंधकके पहाड़से एक झरना आता है जिसका कुछ पानी इस प्रथम कुण्डमें गिरता है, कुछ मन्दाकिनीमें । झरनेका जल इतना गरम है कि कुण्डमें इसके पहुँचनेपर भी लोग कुण्डके भीतर ठहर नहीं सकते । इस तप्तकुण्डके आगे जो खारे जलका कुण्ड है, उसका नाम गौरीकुण्ड है । यात्री सर्वप्रथम इसीमें स्नान करते हैं । कुण्डसे दक्षिणकी ओर उमा-महेश्वर नामक शिला है । इसीके समीप एक छोटे मन्दिरमें गौरी-महादेव, राधा-कृष्ण, ज्वाला-भवानीकी धातु तथा पत्थरकी मूर्तियाँ हैं । मन्दिरके पीछे मीठे जलका अमृतकुण्ड है । ऊँचाई काफी बढ़ जानेके कारण यहाँ काफी ठंड थी । यद्यपि हमलोग त्रियुगीनारायणमें ही स्नानादिसे निवृत्त होकर आये थे; किंतु भोजनादि तो आज गौरीकुण्डपर ही होना था । और भोजनोंके पूर्व दोबारा स्नान करनेके आदी कुछ लोग हमारे दलमें मौजूद थे । इस तरहके लोगोंमें गोविन्ददासकी पत्नी श्रीमती गोदावरी देवी और गोविन्ददासकी भावज नारायणीदेवी दोनों महिलाएँ प्रधान थीं, जो प्रायः भोजनोंके पूर्व दोबारा स्नान करती ही थीं । जब दोपहरमें हमारा कहीं पड़ाव पड़ता और स्नानादि होकर वहीं भोजन बनता तो उनका दुबारा नहाना नहीं होता, चूँकि हम लोगोंके भोजन इस यात्रामें एक ही बार होते थे; किंतु जहाँ कहीं दोपहरको भोजनोंकी व्यवस्था न होकर संध्याको ही ठिकाने लगते, जैसा कि इस यात्रामें अनेक बार हुआ है, वहाँ इन दोनों महिलाओंके दुबारा स्नानकी व्यवस्था हमें करनी पड़ती । जहाँ मौसम अनुकूल नहीं होता, वहाँ पानी गरम करवाना पड़ता । यदि यह न हो तो वे ठंडे पानीसे ही नहानेको उद्यत हो जातीं । किंतु उनके इन स्नानोंमें कभी कोई अपवादकी गुंजाइश नहीं रहती । कंडी-डंडीवाले स्वभावसे गंदे रहते हैं । ये लोग शौच जाकर हाथ भी नहीं धोते । इन लोगोंकी अपवित्रताके कारण ही इस पवित्र यात्रापर पवित्रतम रहनेकी दृष्टिसे ही उक्त दोनों महिलाएँ आवश्यकता पड़नेपर दो वक्त भी नहाती थीं । आज गौरीकुण्डमें सर्दी कुछ विशेष थी; किंतु सौभाग्यसे तप्तकुण्ड भी था । अतः उन्हें नहानेमें असुविधा नहीं हुई । हमलोगोंने भी मुँह-हाथ धोये । गोविन्ददासने मन्दाकिनीमें आचमनकर संध्या की और भोजनादि कर आरामसे रात्रि-मुकाम किया । गौरीकुण्ड भी कुछ बड़ी चट्टी है । घनी आबादी है । जिसमें कुछ अच्छी दूकानें हैं । कपड़ा आदि भी मिल जाता है ।

दूसरे दिन तड़के उठकर शीतल वायुके झोंकोंमें हमने झटपट इन कुण्डोंमें स्नान किये । स्नान-पूजनसे निवृत्त हो अपनी-अपनी लाठी सँभाली और 'जय केदारनाथ' बोल चल पड़े । आजकी हमारी केदारनाथकी यह यात्रा एक ऐतिहासिक

यात्रा थी। गौरीकुण्डसे केदारनाथ केवल सात मील रह जाते हैं किंतु इस सात मीलकी यात्रामें हमें आज काफी ऊँचे जाना था। गौरीकुण्डसे लगभग पाँच-साढ़े पाँच हजार फुट सीधे ऊपर। मार्ग अनदेखा, चढ़ाई कल्पनाके परे और धाम हमारे मुद्दतके अरमानों और सुनहले स्वप्नोंका वह चित्र था जिसे खोजने हम आज निकल पड़े थे। यह सब हमारे लिये अभीतक स्वप्नमय था; किंतु, अपना स्वप्न साकार होनेकी सम्भावना ही नहीं, निश्चिन्ततासे हमारा मन आज आह्लादित था और एक दुर्ज्ञेय लक्ष्यकी ओर अपूर्व साहस और दृढ़ आत्मबलसे युक्त हमारी दुर्बल काया एक अव्यक्त सुख और अदृष्ट ओजसे व्याप्त अपने मनोरथोंके धाम केदारनाथकी ओर जा रही थी। हमारा मन ध्रुव-ध्यान-सा अटल और हृदय तपोनिष्ठ तपस्वियोंकी पवित्रतासे परिपूर्ण था।

केदारनाथकी अपनी अबतककी यात्रामें हमने मार्गमें अगणित दृश्य देखे थे। हिमालयके प्राकृतिक सौन्दर्यसे हमारे नेत्र और मन्दाकिनीके मन्द-मन्द रवसे कान सदा भरे रहे। गुप्तकाशीसे ही हमें दूरपर हिमाच्छादित वह शिखरावली दिखने लगी थी, जिसके नीचे केदारनाथ स्थित हैं। जैसे-जैसे हम चढ़ते जाते थे यह हिमाच्छादित शिखरावली अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती थी। मार्गमें अनन्त वनस्पतिजगत्‌से परिपूर्ण हरित परिधानसे परिवेष्टित हिमालय और जहाँ-तहाँ अगणित जलप्रपातोंका ऐसा सुन्दर सृजन हुआ था कि जान पड़ता प्रकृतिने अपनी सारी सुषमा-सम्पदा यहाँ बिखेर दी हो। इस समय हमलोग केदारनाथकी भीषण चढ़ाई चढ़ रहे थे। अपनी अभीतककी यात्राकी सर्वापेक्षा लंबी और सर्वापेक्षा ऊँची। मार्गकी दृष्टिसे हमें यमुनोत्तरी और गङ्गोत्तरीकी कठिनाइयोंका यहाँ सामना नहीं पड़ रहा था। एक तो रास्ता साफ था दूसरे मोड़दार। फिर भी चढ़ाई तो दम तोड़नेवाली ही थी। पग-पगपर दम फूलता। जब हम केदारनाथसे करीब दो मील दूर रह गये तब हमने पर्वतराजकी कायामें एक महान् परिवर्तन देखा। हम यह देखकर आश्चर्यचकित थे। देखा, चारों ओरकी हरित शिखरावलीके तरु एकदम लुप्त हो गये हैं। ये गिरिशृंग वृक्षावलीसे सर्वथा रहित हैं। परंतु, इनपर अगणित पुष्पोंके पौधे उगे हुए हैं। इन पुष्पोंके आकार-प्रकार, जाति और वर्णका दृश्य देखकर तो हम हैरान हो गये। जहाँ-तहाँ छोटे-छोटे पौधोंकी शाखाओंपर फिर यत्र-तत्र छोटे-छोटे इतने छोटे कि पुष्पोंके आधारमात्र कोमल डंठलोंपर असंख्य कुसुम-कलियाँ और विकसित कुसुम पुष्पित थे। फिर इतने सघन कि अधिक दूरसे नहीं अपितु अत्यधिक संनिकटसे भी ऐसा जान पड़ता जैसे प्रकृतिने परम प्रसन्न हो पर्वतराजकी पीठपर यह पुष्प-सौरभ बिखेर दिया हो, उनकी कायाको सौन्दर्य और शृंगारके श्रेष्ठ प्रतीक सुवासित पुष्पोंके प्रचुर परिमाणसे पाट दिया हो। फिर इन विविध पुष्पसमूहोंका आकार-प्रकार, इनकी सुगंध और सौरभ पुष्पवाटिकामें मँडरानेवाले भ्रमरोंको भुला-भ्रमा और भटका देनेवाला ही नहीं, मन-भ्रमरको ललचा, लुभा और थका देनेवाला होता। हमारा मन-भ्रमर एक कलीपर ठहरता, दूसरी पंखड़ीपर बैठता और तीसरे पुष्पका मकरन्द पान करता न अघाता, फिर अस्थिर-गति-मति और अतृप्तिके भावसे मँडराने लगता। कितने रंगों और रूपोंके थे ये कुसुम। शायद ही कोई ऐसा रंग हो जिसके दर्शन इन सुमनोंमें न हों। लाल रंगके जितने भी प्रकार होते हैं—गहरा लाल, गुलनार, हल्का लाल, गुलाबी; पीले रंगके भी जितने किस्म होते हैं—केशरी, गहरा पीला, हल्का पीला, चंदनी; नीले रंगके भी जितने प्रकार होते हैं—बैंगनी, ऊदा, आसमानी इत्यादि-इत्यादि सभी प्रकारके रंग थे। फिर एकमें दूसरे रंगोंका समावेश होकर सूक्ष्म रूप और बड़े स्वरूपवाले चित्र-विचित्र रंगोंकी जैसी सुन्दर सृष्टि हुई थी इन सुमनोंमें वैसी आजतक तो अनदेखी थी ही, कल्पनाके परेकी वस्तु भी थी। जान पड़ता प्रकृतिप्रदत्त इस पुष्परूप-राशिका ही मानवने अपने भाँति-भाँतिके सुन्दर वस्त्रोंकी विभिन्न डिजाइनों और आभूषणोंमें अनुकरण किया है। इन पुष्पोंमें कुछ भीनी-भीनी-सी एक प्रकारकी मादक महक भी आती और हवाके शीतल झोंकोंमें यह मादक महक यात्रियोंको एक हल्की-सी सुराकी मादकताका अनुभव कराती, जिसके अनुपानमें सेवन करनेसे आदमी एक प्रकारकी एकाग्रताका अनुभव करने लगता है। इसीलिये शायद इस पार्वत्यस्थलका नाम हमारे ऋषि-महर्षियोंने गन्धमादन रक्खा है। गुलाबी और श्वेत गुलाबोंकी तो यहाँ झाड़ियाँ हैं। हमें मालूम हुआ कि दो महीनेके बाद तो इन स्थलोंपर इतने अधिक फूल खिलेंगे कि ये स्थल पुष्प-कालीन बन जायँगे। अनन्तरूपा, अनन्त-रत्ना, पावन प्रकृतिकी यह छवि, उसका यह सौरभ-सुषमा और सम्पदाका सारा दृश्य आज हमारे लिये सर्वथा अकल्पित, अद्भुत और अलौकिक था। हमारे मनमें विचारोंकी तरंगें उठने लगीं। भगवान् विश्वम्भरके धामको हम जा रहे थे। काफी निकट भी अब पहुँच चुके थे। हमें इस समय भगवान् शिवके रूप, उनके निवास-स्थान और उनकी अखण्ड समाधि-सम्बन्धी

अनेक कथाएँ-गाथाएँ स्मरण हो आयीं। इन कथाओंके स्मरण आते ही हमें लगा मानो हम शिवलोकमें विचरण कर रहे हैं। हिमाचलके इस परिवर्तित रूपको देख हमें जान पड़ा मानो हिमवान्‌ने जगत्पति विश्वम्भरको अपनी आत्मजा उमाके अर्पण-के साथ ही उनकी पूजा-अर्चना और आराधनामें अपना सहज स्वाभाविक रूप और भाव तज भगवान् शङ्करके ही सदृश यह दिगम्बरी रूप धारण किया है तथा अनन्त वनस्पतियों और रत्नोंके आगार होते हुए भी भगवान् शिव-को उनकी रुचिके अनुरूप भेंट देने—आत्मार्पणकी भावनासे प्रेरित हो वे स्वयं अपने विराट्‌रूपसे पुष्पमय बन गये हैं, ऐसा जान पड़ा। फिर समीप ही दिखनेवाला जो यहाँसे काफी दूर था, केदारनाथका वह हिमानी शिखर जो अपनी शुभ्र ज्योत्स्नासे जगमगा रहा था, ऐसा जान पड़ता मानो मुकुट-मणि हिमाचलने अपनी पुत्री उमाको हीरोंके ढेरोंके ढेरोंसे भी अधिक जाज्वल्यमान कंगूरोंवाला अत्यन्त विशाल एक ऐसा किरीट भेंट किया है जिसकी कीमत न कुबेर आँक सके और न सृष्टिमें जिसकी कहीं तुलना हो। हमारे प्रदेशके कविवर पण्डित माखनलालजी चतुर्वेदीके एक कविता-संग्रहका नाम हिम-किरीटनी है। कविने 'हिमकिरीटनी' भारत-माताको कहा है। बालकोंके मनोरथोंकी जननी उनकी माताएँ होती हैं। आगे जब अधिकारका क्षेत्र बढ़ता है तो वह स्थान भारत-माताके रूपमें परिवर्तित हो जाता है। माताका पद सनातन धर्ममें बेजोड़ है। हमारे धर्ममें मातृ-ऋण-मुक्तिके प्रयत्न बताये गये हैं, किंतु मावजा नहीं आँका गया। जन्म-जन्मान्तरमें मातृ-ऋण-मुक्ति सम्भव नहीं और इसीलिये माताका पद-पूजाका पद है। भारतमाताके मनोरथोंकी झाँकी हिमालयमें मिलती है, हिमालयसे ही वह बनती है, हिमालयसे ही वह पूरी होती है। अतः इस दृष्टिसे मुकुटमणि हिमवान्‌का यह मुकुट जो उन्होंने जगज्जननी हिंदूमात्रकी आराध्या सनातनधर्मकी पूज्या और हमारे इष्ट मनोरथोंकी सिद्धिदायिनी उमाको भेंट किया है, वह अब हमारी माताका मुकुट है, किरीट है भारतमाताका या हमारी आराध्या भगवान् विश्वम्भरकी भार्या उमा-माताका। हर दृष्टिसे वह हमारी पूजाकी सामग्री है। हमारी आराधनाका मन्त्र है। यह सब याद आते ही 'हिमकिरीटनी' के नामकरण-में कविवर पं० चतुर्वेदीकी सूझ-बूझको हमने हृदयसे सराहा।

(क्रमशः)

आठवाँ आश्चर्य

विषय-सुखमें प्रवृत्त होनेपर उसमें रत रहते हुए जब खुमार चढ़ा हुआ होता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे संसारका सब कुछ पा लिया।

किंतु विषय-सुखसे निवृत्त होनेपर—हो चुकनेपर जब खुमार उतर जाता है तो पता चलता है कि जो कुछ प्राप्त किया था, वह सब और उसके साथ ही पासका भी बहुत कुछ गँवा बैठे हैं!

यह अनुभव—यह बोध बार-बार होता है—होता ही रहता है जीवनपर्यन्त।

फिर भी मानव—योनिश्रेष्ठ, बुद्धि-गर्विष्ठ मानव जीवनभर जीवनमें जीवनके साथ विषय-सुखका घाटेका सौदा अथवा गंदा खिलवाड़ किया करता है। वह सौदा जो उसे टोटा ही टोटा पहुँचाते हुए सत्त्वहीन बनाकर रख देता है; वह खिलवाड़ जो खेल-खेलमें उसे—उसके रोम-रोमको खोखला कर छोड़ता है।

और मजा यह है कि इतनेपर भी—रह-रहकर खुलने—खोली जानेपर भी उसकी—उस विवेक—धनीकी आँखें नहीं खुलतीं।

विश्वके सातों आश्चर्योंको फीका करता—यानी पिछाता—आश्चर्यमें डालता विश्वका आठवाँ आश्चर्य यही है।

—हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि'

कैलास-मानसरोवरमें सिद्ध योगी महात्मा

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

[हमारे जिन श्रीकैलास-मानसरोवर आदिको आज चीन हड़प जाना चाहता है और हमलोग जिसके लिये चिन्तातुर हो रहे हैं, वहाँ आज भी कैसे-कैसे महान् सिद्ध, त्रिकालदर्शी योगी महात्मा रहते हैं, इसके सम्बन्धमें कुछ आँखोंदेखी आश्चर्यजनक सच्ची बातें सुनिये । कुछ समयपूर्व भारतके प्रसिद्ध आर्यनेता आर्यसंन्यासी महात्मा श्रीआनन्दस्वामीजी महाराज (गृहस्थरूपमें महाशय खुशालचंद सम्पादक 'मिलाप') पिलखुवा पधारे थे । उन्होंने अपनी कैलास-मानसरोवर-यात्राके सम्बन्धमें बड़े महत्त्वपूर्ण भाषण दिये थे । उन्हींमेंसे कुछ प्रसंग यहाँ लिखे जाते हैं । इन्हें ध्यानसे पढ़िये । कहीं लिखनेमें भूल रह गयी हो तो श्रीमहात्माजी मुझे कृपया क्षमा करें ।]

महात्मा श्रीआनन्दस्वामीजी महाराजने कहा—

अद्भुत आनन्द

मैं कैलास-मानसरोवरकी यात्रा कर आया हूँ । श्रीकैलास-मानसरोवर जाना एक प्रकारसे मृत्युके साथ खिलवाड़ करना है । वहाँ ऐसी बरफ पड़ती है कि शरीर ठंडसे जम गया-सा प्रतीत होने लगता है । मैं जब मानसरोवर और गौरी-कुंड पहुँचा, तब मेरे साथियोंने वहाँ स्नान नहीं किया । बहुत अधिक शीत होनेके कारण उनकी हिम्मत ही नहीं हुई, पर मैं नहीं माना । मुझे सबने कहा कि 'स्वामीजी महाराज, ठंड बहुत है, बरफ पड़ रही है, आप भी स्नान मत करो । कहीं ठंडमें स्नान करनेसे निमोनिया हो जायगा तो आप मर जायँगे ।' इसपर मैंने उनसे कहा कि 'जब मेरी पार्वती माताने, मेरी गौरी माताने इसमें स्नान किया है तो भला मैं इसमें स्नान क्यों नहीं करूँगा ? मैं यहाँ मरूँगा तो पवित्र स्थानपर ही मरूँगा, इससे बढ़कर मेरा क्या परम सौभाग्य होगा।' मैंने अपने हाथोंसे बरफ हटाकर जब अपने कमण्डलुसे बरफ तोड़कर जल भरकर अपने एक हाथकी ओर डाला तो ऐसा लगा कि मानो हाथ ही नहीं रहा । जब दूसरी ओर जल डालकर स्नान किया तो वहाँ भी ऐसा ही प्रतीत हुआ । जब अपने सिरपर डाला तो सारा शरीर ही जैसे न रहा हो, ऐसा प्रतीत हुआ । तदनन्तर मैं कम्बल ओढ़कर वहाँ ध्यान करने बैठ गया । मुझे वहाँ बैठे ६-७ घंटे हो गये । ऐसा अद्भुत आनन्द आया कि मुझे भान ही नहीं रहा कि मैं यहाँ कबसे बैठा हूँ । मेरा मन एकदम एकाग्र-शान्त हो गया । जो महान् सुख, जो अद्भुत आनन्द मैंने आज पाया, वैसा मैंने जीवनभरमें कभी नहीं पाया । तीर्थयात्रा करनेसे क्या लाभ है, तीर्थयात्रा क्यों की जाती है और तीर्थस्थानका क्या प्रभाव है, इसका मुझे अपने जीवनमें आज पहली बार अनुभव हुआ । गाइडने आकर जब मुझे अपने हाथोंसे झकझोरा, तब मुझे होश हुआ । मैंने उस अपने गाइडसे कहा कि 'तुमने मुझे व्यर्थ ही क्यों छेड़ा ? मैं तो अद्भुत दिव्य आनन्दमें डूब रहा था । तुमने मुझे छेड़कर मेरे आनन्दमें विघ्न डाला यह ठीक नहीं किया ।' गाइडने कहा 'महाराज ! आपको यहाँ बैठे ६-७ घंटेसे भी अधिक हो गये हैं । अब दिन छिपनेवाला है, बरफ भी पड़नी प्रारम्भ हो गयी है, अब आप यदि और अधिक बैठे तो बरफमें जम जाओगे और मारे जाओगे ।' मैंने कहा कि 'मुझे भले ही मर जाने दो, पर मुझे ऐसा सुख फिर कहाँ मिलेगा ?' उसने कहा 'महाराज ! यहाँ मत मरो, मेरी जिम्मेदारी है, इसलिये अब आप उठो ।' मैं उठा । मैंने सारे पहाड़की ओर दृष्टि डाली तो चारों ओर बरफ ही बरफ जमी थी और वह साक्षात् शंकर भगवान्‌का मन्दिर-सा प्रतीत हो रहा था ।

मैंने वहाँ एक बड़ा ही अद्भुत दिव्य स्थान देखा । सारे पहाड़पर बरफ जमी होनेपर भी बीचमें वह ऐसा स्थान था जहाँ बिल्कुल ही बरफ नहीं थी । कहते हैं कि यह वही दिव्य स्थान है, जहाँ श्रीशिवजी महाराजने बैठकर श्रीपार्वती महारानीको अमर कथा सुनायी थी । मैंने अपने गाइडसे कहा कि 'तुम मुझे वहाँपर ले चलो, जहाँ श्रीशंकरजी महाराजने माता श्रीपार्वतीजीको अमरकथा सुनायी है ।' उसने कहा—'महाराज ! वहाँ कोई नहीं जाता है । उधर बहुत ज्यादा बरफ है और जानेका कोई रास्ता भी नहीं है ।' वह मुझे बहुत मना करता रहा, पर मैं नहीं माना । मैंने उससे कहा कि 'मैं तो वहाँ अवश्य ही जाऊँगा ।' मैं वहाँ गया, पर बड़े ही कष्टसे गया । कहींपर बरफसे फिसलकर गिरा, कहीं पैर फिसला तो कहीं चोट लगी । अन्तमें जैसे-तैसे मैं वहाँ पहुँच ही गया और मैं उस दिव्य अद्भुत स्थानपर बैठकर आया कि जहाँ शंकर भगवान् श्रीपार्वतीजीको कथा सुनाया करते थे । वहाँ बैठते ही मेरा मन एकदम शान्त हो गया और मुझे एक प्रकारसे समाधि-सी लगने लगी ।

वहाँसे उतरनेपर मैंने देखा कि एक मद्रासी साधु बेहोशी-की हालतमें एक किनारेपर मुर्दा-जैसा पड़ा हुआ था। कहते हैं कि मना करनेपर भी उसने कुंडमें स्नानके लिये छलाँग लगा दी थी, इसीसे वह ठंडके मारे बेहोश हो गया था और अब उसके बचनेकी कोई आशा नहीं थी। मैंने गाइडसे कहा और उस साधुको एक झब्बूपर लदवाया। फिर उसे रस्सीसे बाँधकर बेहोशीकी हालतमें ही नीचे लाया गया। तदनन्तर उसे अग्नि-से तपाया गया, तब उसे कुछ होश हुआ। वहाँ जलानेकी लकड़ी बिल्कुल नहीं मिलती। वृक्षोंका भला वहाँ क्या काम? बकरियोंकी मैंगनी ही वहाँपर जलायी जाती हैं।

योगी प्रणवानन्दजी महाराजके दर्शन

योगी स्वामीजी श्रीप्रणवानन्दजी महाराज मानसरोवरमें लगभग बीस वर्षसे रहते हैं। मैंने जब उनकी कुटियामें जाकर देखा कि मुझे वे मेरे पहिले देखे हुए पूर्वपरिचित-से प्रतीत हुए। याद आते ही मैंने कहा 'सोमयाजी! सोमयाजी!' वे भी मेरी ओर देखने लगे। वे बीस वर्षपूर्व जब लाहौरमें रहते थे, तब कुछ दिनोंतक मेरे पास रहे थे। उस समय वे राज-नीतिमें भाग लिया करते थे। मैंने उन्हें जब इस बातका स्मरण दिलाया तो उन्हें भी याद आ गया और उन्होंने मुझसे कहा कि मैं बीस वर्ष पहिले राजनीतिमें भाग लेता और राजनैतिक नेताओंके साथ मिलकर काम किया करता था। पर जब मैंने देखा कि राजनीतिमें भाग लेनेवाले प्रायः सभी चरित्रभ्रष्ट हैं तब मेरे मनमें बड़ी ग्लानि हुई और मैं एकदम वहाँसे हटकर यहाँ चला आया। तबसे योगाभ्यास करता हुआ मैं यहींपर रहता हूँ। मैंने जब उनसे पूछा कि 'आपने योगमें क्या सीखा है?' तब उन्होंने मुझे कुछ क्रियाएँ दिखायीं। प्राणायामद्वारा लंबे-लंबे श्वास खींचे और पेट, छाती, टाँग, बाँह, सिर सभीको फुटबालकी तरह फुला लिया, फिर एकदम बैठे-बैठे उनका आसन पृथ्वीसे ऊपर उठ गया और ऊपर छततक लग गया। फिर नीचे आ गया। उनके योगका यह आश्चर्यजनक चमत्कार मैंने अपनी आँखों देखा। उन्होंने और भी बहुत-सी योगकी बातें बतायीं जो सर्वसाधारणके सामने नहीं बतायी जा सकतीं।

देखते-देखते अदृश्य हो जानेवाले सिद्ध योगीके दर्शन

यात्रासे लौटते समय मुझे एक बार दूसरे महान् सिद्ध योगी मिले। मुझे उनके दर्शनका ही परम सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ वरं उनसे मेरी खूब बातें भी हुईं। संध्याका समय था। उस दिन बरफ भी खूब पड़ रही थी। मेरे सब साथी अपने-अपने तंबुओंमें बैठे थे। मैं तंबूसे बाहर निकला। मैं खड़ा होकर कहने लगा कि 'हम यह सुना करते थे कि कैलासमें देवी-देवताओंका निवास है और वहाँ बड़े-बड़े सिद्ध योगी रहते हैं, पर यहाँपर हमें तो कोई भी सिद्ध योगी नहीं मिला, फिर हम कैसे मानें कि यहाँ कोई सिद्ध योगी रहते हैं।' मेरा इतना कहना ही था कि वहाँ मेरे सामने अचानक एक योगी प्रकट होकर खड़े हो गये। मैंने उनकी ओर आश्चर्यके साथ देखा। उन सिद्ध योगीके सारे शरीरपर भस्म लगी हुई थी। ये बड़े ही भव्य और सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। मैंने तुरंत उन्हें नमस्कार किया और उन्होंने मुझे अपने हृदयसे लगा लिया। फिर उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम जो यह कहते थे कि श्रीकैलास-मानसरोवरकी यात्रामें कोई सिद्ध योगी नहीं मिला, सो योगी मिलें कहाँसे? योगीकी कोई खोज भी तो नहीं करता? जो खोज करता है उसे अवश्य मिलते हैं।' इतनेमें ही मैंने क्या देखा कि वे परम-सिद्ध योगी मेरे देखते-देखते तुरंत अदृश्य हो गये। मैंने इधर-उधर देखा तो कहींपर भी दृष्टि नहीं पड़े। मुझे बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि ऐसे पहाड़ोंपर जहाँ बरफ-ही-बरफ पड़ रही है, वृक्षका नाम-निशान भी नहीं है और कोई मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी नहीं रहता, ये योगी यहाँ कैसे रहते हैं? और मेरे मनकी बात इन्हें कैसे मालूम हो गयी? फिर एकदम अदृश्य कैसे हो गये? मुझे लगा कि कहीं मैंने यह स्वप्न तो नहीं देखा है या मुझे कोई भ्रम तो नहीं हो गया है? मैंने अंदर अपने तंबूमें आकर टार्च जलाकर गौरसे देखा तो रोशनीमें मुझे सचमुच अपने कपड़ोंपर योगीके शरीरकी भस्म लगी दिखायी दी, तब तो मुझे पूरा निश्चय हो गया कि यह स्वप्न या भ्रम नहीं था, वरं बिल्कुल सत्य घटना थी और वास्तवमें ही मुझे महान् सिद्ध योगीके दर्शन करनेका परम सौभाग्य प्राप्त हो गया है और सचमुच यहाँ बड़े-बड़े सिद्ध योगी निवास करते हैं।

दूसरे दिन सिद्ध योगीसे भेंट

दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने अपने गाइडसे, जिसका नाम 'शीशखम्भाजी' था, कहा, 'शीशखम्भाजी! बताइये, यहाँपर कोई योगी महात्मा रहते हैं?' शीशखम्भाजीने कहा कि 'महाराज! एक योगी रहते तो हैं।' मैंने उनसे कहा कि 'तुम मुझे

उन योगीके दर्शन कराओ।' शीशखम्भाजीने कहा 'महाराज! उनके पास जो जाता है वे उसे खा जाते हैं।' मैंने कहा, 'तुम इस बातकी परवा मत करो कि वे योगी मुझे खा जायँगे। तुम मुझे उनके दर्शन अवश्य करा दो।' उन्होंने कहा, 'महाराज! मेरी हिम्मत नहीं है कि मैं वहाँ जाऊँ, वह मुझे जाते ही खा जायगा।' मैंने कहा, 'अच्छा, तुम्हारी जानेकी हिम्मत नहीं है तो तुम न जाओ, पर तुम मुझे वहाँका रास्ता बता दो। मैं स्वयं वहाँ चला जाऊँगा।' वे मुझे बहुत मना करते रहे, अन्तमें मेरे बार-बार आग्रह करनेपर मेरे साथ चले और कुछ दूरसे ही रास्ता बतानेको तैयार हो गये। उन्होंने मुझसे चलती बार कहा कि 'महाराज! आपको कहीं वह योगी खा गया तो हम जिम्मेदार नहीं हैं; अब आप जानो!' मैंने कहा कि 'तुम इस बातकी तनिक भी चिन्ता मत करो, मुझे उनके स्थानकी पहचान बता दो।' उन्होंने दूरसे अपने हाथका निशाना करके बताया कि 'सीधे कुछ दूरीपर चलनेपर नीचेकी ओर इस प्रकारका एक पत्थर आयेगा। उसके पास एक और पत्थर है, उसे हटा देना। उसी गुफाके अंदर योगी रहता है।' वे यों बताकर पीछे हट गये और अपने स्थानपर लौट गये। मैं धीरे-धीरे चलकर वहाँ पहुँचा। वहाँ जाकर मैंने वह पत्थर हटाया और गुफामें देखा तो वे गत रात्रिको दर्शन देनेवाले महान् सिद्ध योगी महात्मा ही सारे शरीरपर भस्म लगाये विराजमान हैं। उन्होंने मुझे देखा और बड़े प्रेमसे मुझे अपने पास बुला लिया। अब तो मेरी उनसे खूब खुलकर बातें हुईं। मैंने उनसे पूछा 'महाराज! क्या यह बात सत्य है कि आपसे जो मिलने आता है, उसे आप मारकर खा जाते हैं।' उत्तरमें उन्होंने हँसते हुए कहा, 'क्या मैं कोई राक्षस हूँ कि जो मनुष्यको खा जाता हूँ। कोई मनुष्य मेरे पासतक न आये इसीलिये यह डर दिखाया हुआ है और कोई बात नहीं है। मैं किसीको खाता नहीं हूँ।'

उन सिद्ध योगी संतसे मेरी बातें होती रहीं। उन्होंने बहुत-सी ऐसी बातें भी बतायीं, जिनको किसी दूसरे मनुष्यको बतानेसे मुझे मना कर दिया। इधर मैं उनसे बात कर रहा था और बहुत देर होनेके कारण उधर हमारे साथियोंमें मेरे न लौटनेसे बड़ी चिन्ता हो रही थी। वे सोच रहे थे कहीं योगीने उन्हें मारकर खा न लिया हो! वे दूरसे मेरा नाम ले-लेकर आवाज दे रहे थे पर उनकी इतनी हिम्मत नहीं थी कि जो मेरे पासमें आ सकें। मुझे इस बातका कुछ भी पता नहीं था। उन सिद्ध योगीको वहीं बैठे-बैठे सब पता लग गया और उन्होंने कहा कि 'अच्छा, अब तुम जाओ, तुम्हारे साथी बहुत घबरा रहे हैं। वे बड़े व्याकुल हो रहे हैं। उन्हें चिन्ता हो गयी है कि कहीं योगीने तुम्हें मारकर खा न डाला हो!' मैंने कहा 'महाराज! आपको यह कैसे मालूम हो गया कि वे बड़े चिन्तित हो रहे हैं? आप तो यहाँ बैठे हैं?' उन्होंने कहा 'रात्रिको जब तुमने यह कहा था कि हमें कैलास-मानसरोवरकी यात्रामें कोई योगी नहीं मिले, तब बताओ मुझे कैसे मालूम हो गया था और मैंने उसी समय प्रकट होकर कैसे तुम्हें दर्शन दिये थे? मुझे भूत, भविष्य, वर्तमान सबका ज्ञान है। अमेरिका, इंग्लैंड, रूस, जर्मनी, हिंदुस्थान आदि-आदि देशोंमें कहाँ कब क्या हो रहा है इसका भी मुझे सब पता है।'

मैं उन त्रिकालज्ञ सिद्ध योगीको नमस्कार करके अपने स्थानपर लौट आया। आकर देखा तो मेरे साथी वास्तवमें बहुत घबराये हुए थे और बहुत ही चिन्तित थे। मुझे योगीके पाससे जिंदा वापिस लौटा देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। मैंने उन महान् सिद्ध योगीसे भेंट करके अपने जन्मको सफल माना। इससे मुझे जो प्रसन्नता हुई वह वर्णनातीत है।

जीवात्माका दर्शन करानेवाले लामा योगी

मैंने वहाँ कई बौद्ध तामसिक सिद्धिवाले साधु भी देखे कि जो कच्चा मांसतक खा जाते हैं। वे तामसिक होते हैं और उन्हें तामसिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मुझे वहाँ ऐसे बौद्ध लामा योगी भी मिले कि जो मांस बिल्कुल नहीं खाते और बड़े सिद्ध योगी हैं। मैं एक बहुत बड़े बौद्ध लामा योगीके पास उनके दर्शनार्थ गया। न तो वे बौद्ध लामा योगी हमारी भाषा जानते और न हम उनकी भाषा जानते थे, इसलिये एक दुभाषियाको बुलाया गया। उसके माध्यमसे उनकी मेरी खूब बातें हुईं। मैंने जब उनसे योगके सम्बन्धमें गुप्त बातें पूछीं तो उन योगीने कहा कि 'यह दुभाषिया अनधिकारी है इसके सामने ये बातें नहीं बतायी जा सकतीं। इसलिये इस दुभाषियेको यहाँसे हटा दो।' मैंने वहाँसे उसे हटा दिया। पर बात तो भाषा-ज्ञानके अभावमें हो नहीं पायी अतः फिर दुभाषियेको बुलाकर मैंने कहा कि इनसे कहो कि ये मुझसे यौगिक भाषामें बातें करें, जिससे हम एक दूसरेकी बातें भलीभाँति समझ सकें।' उन्होंने यौगिक भाषामें बातें करना स्वीकार कर लिया।

फिर उनकी हमारी यौगिक भाषामें खूब बातें होती रहीं। उन्होंने प्राणायामद्वारा अपने शरीर, छाती आदिको फुलाया और हृदय-स्थानके पास एक चमकती झिलमिलाती मणिके रूपमें अँगूठेके बराबर जीवात्माका मुझे साक्षात् दर्शन कराया। इससे मुझे बड़ा ही वर्णनातीत आनन्द प्राप्त हुआ।

मुझे वहाँ और भी बड़े-बड़े सिद्ध योगी मिले, पर उन्होंने अपने सम्बन्धमें किसीको भी कुछ भी बतानेसे मना कर दिया। इसलिये मैं उनके सम्बन्धमें किसीको कुछ भी नहीं बता सकता। श्रीकैलास-मानसरोवरमें आज भी बड़े-बड़े सिद्ध योगी पुरुष गुप्त रूपसे रहते हैं, यह मुझे पूर्ण निश्चय हो गया। शास्त्रोंमें इनकी महिमाके सम्बन्धमें लिखी बातें अक्षर-अक्षर सत्य हैं; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

कर्तव्य-पालन या मूर्खता-प्रदर्शन ?

(लेखक—श्रीश्रीचन्दजी दोनेरिया)

सन् १९५५ ई०में मैं स्वदेशी बीमा कम्पनीकी संचालक-समिति (बोर्ड ऑफ् डायरेक्टर्स) का अध्यक्ष यानी चेयरमैन था। मेरा सारा समय कम्पनीके काममें ही व्यतीत होता था। उस समय यह कम्पनी जमीदारी बौंडोंको खरीद रही थी। ये बौंड उत्तरप्रदेशीय सरकारसे जमीदारोंको उनकी जमींदारीके बदलेमें मिले थे। इन बौंडोंके क्रय-विक्रयसे कम्पनीको अच्छा लाभ होता था। ये बौंड मैं ही खरीदता था। उनके खरीदनेके लिये मुझे आगरा और उसके समीपवर्ती अन्य जिलोंके मुख्य-मुख्य स्थानोंमें भ्रमण करना पड़ता था। मेरा यह भ्रमण मोटरकारद्वारा होता था। मैं दिनमें काम और रातमें भ्रमण करता था। अथवा यों कहिये कि मेरे रात-दिन प्रायः यात्रामें ही बीतते थे। बौंड खरीदनेके लिये मेरे पास हजारोंकी रकम रहती थी; परंतु मैं निर्भय और निर्द्वन्द्व होकर कारद्वारा यात्रा करता ही रहता था। इस प्रकार मैंने सहस्रों मीलोंकी यात्रा की। इन यात्राओंमें कई दुर्घटनाएँ भी सामने आयीं, जिनका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है। एक बार मुझे इलाहाबाद और खागाके बीच मोटरारूढ़ ५-६ बदमाश मिले। यात्रियोंको लूटना इनका काम था। इसी घातमें वे उधर आये थे। मैं अपनी कार बिना रुकवाये सीधा पुलिस-स्टेशन पहुँचा। थानेदार तथा कई सशस्त्र पुलिस कॉनिस्टेबिल मेरे साथ आये और उन गुंडोंको गिरफ्तार करके ले गये। मुकदमा चला और उन्हें सजा हुई।

अपनी एक ऐसी ही यात्रामें एक रातको मैंने मेरठ-दौराला सड़कपर एक घायल आदमी पड़ा देखा। मैं उसे अपनी मोटरमें रखवाकर खतौली थाने ले गया और वहाँ उसके रिश्तेदारोंको बुलाया। फिर पुलिस और रिश्तेदारोंको साथ लेकर मैंने उस घायलको मुजफ्फरनगर अस्पतालमें भर्ती करा दिया। कुछ दिनों बाद वह अच्छा होकर अपने घर चला गया।

दूसरी घटना बड़ी विचित्र है। मैं मेरठमें बौंड खरीदनेका काम समाप्त कर रातके ८-९ बजे कारद्वारा आगराकी ओर चला। जब कार अलीगढ़ और सासनीके बीच आयी तो मुझे मेरे ड्राइवरने जगाया। चपरासी भी साथ था। मैं उठा और कारकी लाइटमें मैंने देखा कि दो-तीन फर्लांग आगे सड़कपर एक आदमी पड़ा है। उस समय रातके दो बजे थे और साथमें २७०००) रुपयेकी रकम मेरे पास थी। मेरे ड्राइवरने कहा कि 'बाबूजी, बड़ा खतरा मालूम देता है। जोखों भी पास है। मैं कारको तेज करता हूँ, जिससे जल्दी खतरेसे निकल चलें।' उस समय मुझे मेरठ-दौरालाकी उपर्युक्त घटना स्मरण हो आयी। इधर परम प्रभु परमात्माकी प्रेरणा भी हुई कि आखिर इस आदमीको ऐसी बुरी हालतमें देखकर कुछ तो सहायता करनी ही चाहिये। मैंने तुरंत मोटरकी गति धीमी करवायी और अपना 'रिवालवर' हाथमें लिया। पास जाकर देखा तो सड़कपर पड़े उस नवयुवकके सिर और मुँहसे खून बह रहा है। हाँ, उसकी साँस अवश्य चल रही थी, अर्थात् वह जीवित था। मेरे कहनेसे ड्राइवर और चपरासीने उस घायलको मोटरमें रक्खा। उस समय बेचारेने पीनेको पानी माँगा, परंतु पानी वहाँ कहाँ था। कुएँसे मँगाया जा सकता था, परंतु ऐसा करनेमें खतरा था; क्योंकि कुछ देर लगती, अस्तु।

वहाँसे हमारी मोटर दौड़ी तो सासनी पुलिस-स्टेशनपर रुकी। वहाँ रिपोर्ट दर्ज करायी गयी और उस घायलको सासनीके शफाखानेमें भर्ती करा दिया गया। डाक्टर साहब बड़े सज्जन और सहृदय थे। उन्होंने उस घायलकी बड़ी तत्परतासे तुरंत चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। थानेदार साहब दो शस्त्रधारी

कॉनिस्टेबिलोंसहित मुझे लेकर मेरी ही कारद्वारा घटना-स्थलपर पहुँचे और वहाँकी सारी स्थिति देखी। मैंने कहा, 'दरोगाजी! यह जगह बड़ी खतरनाक है। बियावान जंगल है। न यहाँ कोई गाँव है न नगर। चौपट मैदान है। गुंडेलोग मुसाफिरों-को लूटते रहते हैं। उनकी चिल्लाहट सुननेवाला भी कोई नहीं है। मैंने सरकारी अफसरोंको लिखा है कि यहाँ यात्रियोंकी सुरक्षाका प्रबन्ध होना चाहिये। समाचारपत्रोंमें भी मैंने अपना यह विचार प्रकाशित कराया है। अब आपसे भी यही निवेदन करता हूँ।' दरोगाजी बोले, 'आप ठीक कहते हैं, मैं भी इसके लिये उद्योग करूँ-कराऊँगा।'

यहाँसे लौटकर हमलोग अपनी कारद्वारा फिर सासनी अस्पताल आये। प्रातःकाल हो चुका था, उस घायलकी हालत अच्छी थी। उसने बताया कि मैं रोहतकके एक जाट-परिवारमें पैदा हुआ हूँ। ट्रकमें मैं माल लादकर लाया था। सबसे ऊपर बैठा था। एक पेड़की शाखाकी झपटसे मैं सड़कपर गिर गया। ट्रक-ड्राइवरको इसका क्या पता था। वह गाड़ीको दौड़ाता हुआ आगे बढ़ गया।' पीछे पता लगाकर इस घायलके घरवाले भी सासनी पहुँच गये थे। कई दिनकी चिकित्सासे यह नवयुवक भला-चंगा हो गया।

इस सेवा या कर्तव्य-पालनके लिये मेरे बीसियों मित्रोंने मुझे मूर्ख बताया। वे कहने लगे कि 'अपने जीवन और धनको खतरेमें डालकर ऐसा उपकार करना बड़ी मूर्खता है।' मैं कहता हूँ कि मैंने ऐसा करके परम प्रभु परमात्माकी प्रेरणाका पालन किया। अब मैं इन पंक्तियोंके सहृदय सज्जनोंसे पूछना चाहता हूँ कि 'ऐसा करके मैंने अपना कर्तव्य-पालन किया अथवा मूर्खताका परिचय दिया?'

ब्रह्म

(श्री आर० एमरसनकी रचनाका अनुवाद)

यदि खूनी हत्यारा समझे उसने हत्या की है
या यदि मरनेवालेको यह लगे गया वह मारा!
भली भाँति वे नहीं समझते तब तो रीति विलक्षण
मैं रहता और जाता, आता मैं ही स्वयं दुबारा॥
दूरी और विस्मृतिमें मुझको सदा निकटता लगती
आतप और परछाईं लगते बिलकुल एक बराबर।
जो हैं अन्तर्धान अमर वे मुझको दीखा करते
एक रूप हैं यश और लज्जा मेरे लिये निरन्तर॥
कुत्सित-सा अनुभव करते हैं मुझे त्यागनेवाले
होता हूँ पंखोंकी जोड़ी जब वे मुझे उड़ाते।
शंकाशील स्वयं ही हूँ मैं और स्वयं आशंका
और स्वयं वह ऋचा कि जिसको वेद-विशारद गाते॥
सबल देवतक भटका करते वास खोजते मेरा
खाक छानते फिरते यूँ ही सात स्वर्गके वासी।
लेकिन तू जो सुन्दरताका है निर्दम्भ उपासक
मुझको पाकर पीठ मोड़ता सुरपुरका अभिलाषी॥

(अनु०—श्रीविजय निर्बाध)

गीत

(रचयिता—डा० हरवंशरायजी 'बच्चन' एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

मेरे प्रियतम नाच रहे हैं, मैं कैसे हट जाऊँ।
कुछ भी ज्ञात नहीं क्या मुझमें
देखा, संग लगाया,
कुछ भी याद नहीं है कबसे
मुझको अंग लगाया;
गलत पसंद जगत्‌में उनकी
दर-दर कहलायेगी;
मेरे प्रियतम नाच रहे हैं, मैं कैसे हट जाऊँ।
अंबरके सँग नाच रहे हैं
अनगिन रवि, शशि तारे,
धरतीके सँग नाच रहे हैं
गिरि, तृण, तरु छतनारे,
जंतु जंतुके तंतु तंतुमें
नाच रही अभिलाषा;
अविरत, अविरल नर्तक-दलसे मैं ही क्यों कट जाऊँ।
मेरे प्रियतम नाच रहे हैं, मैं कैसे हट जाऊँ।
बहुत किया अभिमान कि उनकी
मेरी अनुपम जोड़ी,
अब क्यों घबराऊँ जब उनसे
मेरी होड़ा-होड़ी,
तन हारेकी हार नहीं जो
मनकी बाजी जीते,
तन विथकित हो, तन विघटित हो, मनसे क्यों घट जाऊँ।
मेरे प्रियतम नाच रहे हैं, मैं कैसे हट जाऊँ।
दो में, चाहे लय-मय झूमे,
चाहे जाय घसीटा,
परबस खाया मीठा माहुर,
निज बस माहुर मीठा,
किसको है अधिकार यहाँपर
क्षण भर जो थम जाए,
मैं प्रियतमके अंग-अंगसे और अधिक सट जाऊँ।
मेरे प्रियतम नाच रहे हैं, मैं कैसे हट जाऊँ ?

वैज्ञानिक संजीवनी (Vaccine Honey)

(लेखक—श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)

[गताङ्क पृष्ठ १०६६ से आगे]

हाँ, नहीं !

सभ्य देशोंमें शराब, अफीम इत्यादि नशीली, जहरीली नुकसान करनेवाली चीजें बनाने-बेचनेवालोंको सरकारसे लाइसंस लेना पड़ता है, परंतु उनका उपयोग करनेवालोंको नहीं । कहीं-कहीं इनका पूरा बहिष्कार होनेपर भी 'डाक्टरके प्रमाणपत्र'से इन्हें सुलभ करनेकी छूट दी जाती है । आगेका दरवाजा बंद करके पीछेकी खिड़की खुली रखनेके समान ऐसे कानूनोंसे सुधार सम्भव नहीं । यदि जहरसे आदमी मरता हो तो उसे बिल्कुल ही क्यों नहीं बंद कर देते ? जहरसे कोई जिंदा रहता है और इसके लिये डाक्टरका प्रमाणपत्र लेकर उसका प्रचार करना कानूनकी विचित्र विडम्बना है । एलोपैथिक उग्र विषाक्त दवाओंके विषयमें भी यही बात होती है । जब किसी नयी चमत्कारिक दवा या इन्जेक्शनका प्रचार प्रयोगार्थ हो जाता है—जैसे चेचकका टीका, बी. सी. जी. का टीका, सल्फा, पेनिसिलिन एंटि-बायोटिक दवाइयाँ, जिनके व्यापक प्रयोगसे जब घातक हानियाँ देखनेमें आती हैं और जनता हल्ला-गुल्ला करती है, तब पार्लियामेण्टमें कुछ हल्की-गीली बहसके बाद हुक्म निकलता है कि 'इन दवाओंकी अति आवश्यकता होनेपर होशियारीसे थोड़ी मात्रामें इनका उपयोग करो ।' विदेशों और भारतमें ऐसा ही हुआ है परंतु स्वार्थी व्यवसायकी गाड़ी तेजीसे चली जाती हुई, कुछ दूरके लिये कहीं खतरेकी लालबत्ती देखकर धीमी भले ही हो जाय, रुकती नहीं । अमेरिकासे प्रकाशित 'वर्ल्ड मेडिकल जर्नल' (संसारके सब देशोंकी डॉक्टरी संस्थाओंका विश्व-संगठित मासिकपत्र) के सितम्बर १९५९ के अंकमें सब सदस्य देशोंकी स्पेशल 'रिपोर्ट' स्तम्भमें पेनिसिलिन-प्रतिक्रिया-विषयक, अमेरिकाके 'फुड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन' के प्रमुख डॉ. हेनरी. वेल्चने 'एंटि-बायोटिक' विभागकी सूचना प्रकाशित की है कि 'अन्य एंटि-बायोटिक कही जानेवाली चमत्कारी ओषधियोंकी अपेक्षा पेनिसिलिनका घातक प्रभाव नब्बे प्रतिशत देखा गया है, जब कि वह इन्जेक्शन द्वारा 'मांसल' शरीरमें दी गयी थी ।' इतना लिख देनेके बाद महोदयने भाषाको नरम कर दिया है—'इससे ज्ञात होता है कि पेनिसिलिन इस प्रकार देनेके पहले, जरूरत है या नहीं, इसका विचार कर लेना चाहिये ।' आगे अपने डॉक्टरी पक्षको मजबूत और निरपराध बताते हुए लिखा है—'रोगियोंकी उपचार-चर्चा देखनेपर मालूम हुआ कि डॉक्टरोंने पेनिसिलिनका कोई अंधाधुंध प्रयोग नहीं किया, लाखों लोगोंको पेनिसिलिन हर साल लगती है, उनपर प्रतिक्रिया बहुत कम होती है और बहुतोंकी तो जिंदगी बच गयी है । हाँ, इसमें कोई उत्तेजक तत्त्व होनेसे शरीरमें कोई प्रतिक्रिया ऐसी हुई होगी ।' (World Medical Journal, September 1959, p. 317.) Penicillin Reactions.

According to Dr. Henry Welch, Chief of the Food and Drug Administration (FDA) division of antibiotics, serious reactions to penicillin are increasing. The FDA survey, covering the principal antibiotics, showed substantially a higher number of reactions to penicillin than to other antibiotics. A third of the reported reactions to all antibiotics were classified as life-threatening and about 90% of these were attributed to penicillin. The trend of increase in serious reactions, especially from penicillin given by intramuscular injection shows there should be a clear-cut indication of need before the drug is given. The study of case histories indicates that there has not been indiscriminate use of penicillin by physicians. The number of reactions to penicillin is still small when considering that millions of persons receive it each year and that it has saved many lives. An increase is to be expected in the wise use (?) of a highly antigenic substance.

दो अंधे

यह वैज्ञानिकोंकी लेखन और प्रचारचातुरी देखिये।

अंधे दो प्रकारके होते हैं। एक तो वे जो अंधे हैं ही; परंतु दूसरे वे, जो आँखें होते हुए भी नहीं देखते, देखते हुए भी अक्लसे नहीं समझते—ये होते हैं अन्धबुद्धि लोग। अक्सर डाक्टरोंमें सौमें एक ऐसी दवा या नशीली चीजोंका गुलाम, स्वयं अपनी विशेष बीमारीसे होता है, और उसके प्रमाणपत्र, नुस्खेसे जनतामें सौमें दस व्यक्ति दवाकी आदतसे गुलाम बनकर हानि उठाते हैं। औद्योगिक स्वार्थ इसका मूल है। निर्विकार, रहस्यमय परमात्माको छोड़, साक्षात् साकार नगद-नारायणकी पूजा जल्दी फल देती है। राबर्ट कॉच (Robert Koch 1843-1910) ने अपने शोधोंसे यह सिद्ध किया कि मानवी और पशु-दुग्धमें भी क्षयरोगके कीटाणु होते हैं, जिसके सेवनसे क्षय-रोग हो सकता है।

The bovine germ, in cows, milk could infect human beings and cause tuberculosis.

इस सिद्धान्तका प्रचार हो जानेके कुछ वर्षों बाद उसने अपने शोधोंकी गलती मालूम की और उसे रद्द कर दूसरी बात प्रकाशित की तो दुनियाके वैज्ञानिकों, डॉक्टरों और उद्योगपतियोंने उसकी इस नयी बातको ठोकर मार दी; क्योंकि फ्रांसके लुई पाश्चरने दूधको पेश्चराइज करने, कीटाणुओंको नष्ट करनेका तरीका प्रचलित कर लिया था और मशीनें बनकर बाजारमें पहुँच गयी थीं। अतएव राबर्ट कॉचकी दूसरी खोजसे उनके व्यवसायपर आघात होता था। अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशनने भी राबर्ट कॉचकी यह नयी बात ठुकरा दी। यदि राबर्ट कॉच और भी जिंदा रहा होता तो निश्चय ही वह कीटाणुवाद—रोगकी उत्पत्ति कीटाणुओंसे होनेका सिद्धान्त—अपनी शोधोंसे बदल देता। वह धनलोभी व्यापारी न होकर सत्यशोधका प्रेमी था। देखिये हमारे देशमें तथा अन्यत्र सर्वत्र दुग्धशालाओंके लिये दूधको पाश्चरकी नीतिके अनुसार कीटाणुरहित करना कानूनसे आवश्यक है। उसे सरकार और वैज्ञानिकोंद्वारा शुद्ध और लाभकर बताया जाता है और जनता सरकारका विश्वास करके इस मुर्दे दूधका सेवन करती है, परंतु गाँवोंमें गरीब नंगे अर्धसभ्य किसान लोग इस वैज्ञानिक मुर्दा जादूको न जानकर आदिमकालसे दूधको मिट्टीकी हंडीमें धीमी आगपर बहुत देर-तक पकाते हैं, जिससे उसमें तथा दही-छाछमें भी मिठास आ जाता हैं और ग्रामीण युवक उसीको खा-पीकर पहलवान बनकर कुश्ती मारते हैं, किसीको क्षयरोग नहीं होता देखा गया; परंतु शहरोंमें पेश्चराइज दूधने कितने लोगोंको पहलवान बनाया है ? शहरोंमें ही क्षयरोग अधिकतर हुआ देखा जाता है और क्षयरोगके अस्पताल खुलते जा रहे हैं !

अज्ञानी, अंधविश्वासी, असंयमी जनता, शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही बीमार पड़नेपर डॉक्टरकी यह बात मानती है कि रोग कीटाणुओंसे होता है और हुआ है। इस सिद्धान्तसे रोगी अपना अपराध न जानकर मुक्त रहता है। रोग होनेमें स्वयंकी गलती, असंयम, नहीं जानता नहीं मानता; क्योंकि डॉक्टरने कह दिया है कि रोगोंके कीटाणु हवा-पानी, साग-भाजी, फल और दूध, स्पर्शमें आनेवाली सभी वस्तुओंमें सर्वव्यापक हैं। और स्वास्थ्यरक्षाके लिये उनसे बचनेका कोई विशेष उपाय अथवा साधन भी डॉक्टर नहीं बताते, केवल इतना कि मुँह-नाकपर बारीक जाली बाँधो, हाथ-पाँवमें मोजे-दस्ताने पहनो, खानेकी वस्तुएँ गरम पानीसे धो लो, दूध-पानी उबालकर पियो, कीटाणुनाशक दवाइयाँ पानीमें डालकर नहाओ और हवामें कीटाणुनाशक धुआँ डी. डी. टी. आदि फैलाओ, जिससे कीटाणु मर जायँ, मक्खी-मच्छर न पैदा हों।

पेटके लिये !

इन कीटाणुओंको नष्ट करनेके रासायनिक उद्योग भी खड़े हो गये और गाँव-गाँव फैल गये। यदि यह उद्योग न हो तो कीटाणु कैसे नष्ट हों ? कीटाणुवादका प्रचार न होता तो यह सब स्वार्थी गोरखधंधा कैसे पैदा होता और पलता ? दुनियाँकी परम्परा बड़ी जबर्दस्त है। जो बात बड़े लोग कह दें और वह रिवाजमें चल पड़े, जो बात डंकेकी चोटपर, भालेकी नोकपर, बंदूक, तोपके मुँहके सामने कही जाय, वह सच्ची होती है। चीनके किसी बादशाहकी बेगमका पाँव कुरूप था, वह लँगड़ी थी, अतएव उसके सामने स्वस्थ पाँववाली, सीधे पाँव चलकर आनेसे कठोर दण्ड पाती थीं, इस कारण पाँवमें काठ पहिनकर और बचपनसे ही पाँवोंमें काठ पहिना देनेका रिवाज चल पड़ा और लाखों स्त्रियोंमें इसे 'सौन्दर्य' मानकर प्रचलित किया गया। हिटलर कहता था कि कोई झूठ बात बार-बार जोरसे डंकेकी चोटपर बोलते जाओ, वह सिद्ध हो जायगी। मानस-

चिकित्सा-विज्ञान suggestotherapy का यह सिद्धान्त है और यह सिद्धान्त सरकारों और वैज्ञानिकोंके प्रचारोंद्वारा प्रत्यक्ष फैलकर अपना रूप दिखा रहा है।

अंग्रेजी गुलामीके जमानेकी बात दूसरी थी, अब हमारे जनतन्त्र भारतमें हरेक रोगनिरोधके लिये टीके और इंजेक्शन, बी. सी. जी. आदिपर बहुत जोरोंसे टिकटों, झंडियों, पोस्टरों, लेक्चरों, अखबारों, रेडियो तथा विशेष सरकारी आज्ञाओं और अभियानद्वारा प्रचार किया जाता है। लिम्फ मँगाये जाते हैं; परंतु यह लिम्फ अथवा टीके या इंजेक्शनके पदार्थ कौन-सी चीज हैं, कहाँसे, किसने, कैसे बनाये हैं, इस सम्बन्धमें भोले भारतीय और शिक्षित समुदाय, अंधबुद्धिकी भाँति उसे स्वीकार कर लेते हैं, कुछ पूछते नहीं, जानते नहीं। किसी भी प्रमाणित अंग्रेजी अथवा मेडिकल डिक्शनरीमें इसका अर्थ देख लीजिये।

खग भाषा !

लिखा मिलेगा—'गायके चेचकके फफोलोंमेंसे निकाला गया रस या मवाद दूसरा अर्थ भी दिया है—'पवित्र जल' colourless fluid from organs of the body; pure water; matter from cowpox vesicles used in vaccination. अब यह गायोंसे नहीं, भेड़ोंसे तैयार किया जाता है और पहले भेड़ोंको मार डाला जाता है तब निकाला जाता है। डॉक्टरी और सरकारी प्रचारमें बताया जाता है कि—'यह शुद्ध है, विषकारक नहीं है, ग्लिसरीन मिश्रित बना हुआ है' परंतु "Pure, aseptic, glycerlinated" शब्दोंमें कितना धोखा है! क्योंकि यह शरीरसे प्राकृतिक दशामें निकला या निकाला हुआ न होकर, उस पशुमें पहले किसी रोगीका विषाक्त रक्त या मवाद प्रविष्ट कर उसके विकसित होने अथवा फैल जानेपर उसे मारकर या जिंदा हालतमें निकाला जाता है, अतएव यह शुद्ध और विषकारक नहीं है, कैसे माना जाय? ग्लिसरीन तो उसमें बादमें मिलाया जाता है। इंग्लैंडके एक सात्त्विक स्वास्थ्य मासिकपत्रिकाके सम्पादक स्व० बेलेंटाइन नेग्सने लिखा है—

In Government papers, official apologies, innocent words regarding vaccine, are made as 'pure, aseptic, glycerinated' to suggest that vaccine is the desired remedy, but in fact the lymph is not a natural product derived from cows, as is milk; lymph is actually clear fluid found in tissues of normal healthy animals, but vaccine lymph is the same fluid extracted from animals affected with horrible disease. As such, words 'pure, harmless, and taken from healthy animal, free from disease is grotesque perversion of Truth. The unfortunate beasts, saturated with foul products of the virus with which they have been infected, are subsequently sold as 'prime veal." प्राइम वीलका अर्थ—बढ़िया ताजा बछड़ेका मांस। अर्थात् जिस पशुमेंसे मवाद निकाल लिया जाता है, उसके मांसको बाजारमें 'सर्वोत्तम ताजा मांस' कहकर भोजनके निमित्त बेचा जाता है।

निर्भय वाणी

ग्लासेस्टर, इंग्लैंडके डॉ० वाल्टर हाडविन एम० डी०, एम० आर० सी० एस० ने लॉस एंजलीस, अमेरिकामें एक वार्तामें कहा था कि 'टीका और इंजेक्शन लगानेका दुष्ट कार्य केवल अंधविश्वासके आधारपर हो रहा है।

The whole of this wretched vaccination and inoculation system is based on superstition.

और जापानमें छुआछूतसे फैलनेवाले रोगोंकी चिकित्सापर शोध-संस्थाके संचालक और टीकेके विषयमें प्रमुख मान्य अधिकारी डॉ० क्रितासातोने अपने प्रयत्नोंसे हारकर कह दिया था—'निश्चय ही यह चेचककी विषाक्तताका प्रमाण है। यह ऐसी आग है जिससे बचनेके लिये कोई रक्षक साधन नहीं है। बीमारीका इलाज बीमारी पैदा करनेसे नहीं हो सकता।'

'This is unmistakable evidence of the virulence of smallpox. It is like a devastating fire to which nothing is fireproof You can't fight disease with disease.'

किसी रोगी मनुष्यके रक्त या मवादसे वही रोग किसी पशुमें उत्पन्न कर उसका मवाद पुनः इलाजके लिये रोगी अथवा स्वस्थ मनुष्यमें चुभाकर रोग रोकनेका विज्ञान बताना अंधविश्वास मात्र है। वैज्ञानिक बूचड़खानों-जैसी शोध-संस्था कही जानेवाली एक रॉकफेलर इन्स्टीट्यूटके संचालकने अल्बानी (अमेरिका) की लेजिस्लेचर कमेटीके सामने अपने धंधेकी दुहाई देते हुए प्रचलित अंधविश्वासको यों पुष्ट किया था—

'यदि चीर-फाड़-प्रयोगविरोधी कानून बन जायगा तो मेरी जीविका कैसे चलेगी ? मैंने तो चीर-फाड़के अतिरिक्त कोई दूसरा काम सीखा ही नहीं ।'

बस, ऐसा ही इस सम्बन्धमें सब सरकारी डॉक्टरी, वैज्ञानिक विभागोंके विषयमें भी समझिये । यह सबकी पारस्परिक रोटीका रोजगार है, दुनियाँमें खून और मवादकी नदियाँ बहाकर उनमें शहद और संजीवन रस पानेकी मृगतृष्णा ! वैज्ञानिक (बे ज्ञानका) चमत्कार !

निर्दय शिक्षा

मुर्दों और जिंदों, मनुष्य और पशुओंकी चीर-फाड़ करनेकी यह निर्दय क्रिया, केवल कॉलेजोंमें ही सीमित नहीं है, विदेशोंमें यह काम प्रारम्भिक शालाओंसे छोटे बच्चोंद्वारा कराने और उनके दिल मजबूत करनेकी शिक्षा दी जाती है कि वे दया, धर्म और आत्मीयताका अंधविश्वास छोड़कर 'कठोर हृदय' बनकर मानवताकी सेवा और विकासके लिये निर्दय अन्वेषक बनें ।

अमेरिकाके मिसूरी लीग फॉर ह्यूमेन प्राग्रेस (Missouri Leage for Humane Progress) की सालाना बैठक २० जून ५९ में सेक्रेटरीने बताया कि 'अंग्रेजीभाषी राज्योंमें प्रारम्भिक शालाओंके बच्चोंको भी अनेक जन्तुओंकी चीर-फाड़के लिये प्रोत्साहित किया जाता है कि 'तुम अपने मनमें कोई दया, पीड़ा, हत्या, पाप आदिका विचार या भाव न रखकर बेधड़क चीर-फाड़ करो; तुम्हें वैज्ञानिक शोधक बनना है, संसारके मानवका कल्याण करना है ।'

प्रयोग देखिये !

भारतसे लन्दन होकर १९५३ से १९५६ तक प्रतिवर्ष अमेरिकाको २० हजार, ६६ हजार, ९३ हजार और १ लाख २० हजार कुल लगभग तीन लाख बंदर भेजे गये । इन सब बंदरोंके मूत्रपिण्ड (Kidney tissue) से बालपक्षाघातके रोगी बच्चोंके इलाज तथा रोग-निरोधके लिये 'साल्ट' टीका बनानेके लिये ! सन् ५३-५४ में हवाई जहाजोंमें ले जानेमें एक हजार रास्तेमें मर गये । जिन जालीदार बक्सोंमें ये बंदर ठूँस-ठूँसकर बंद किये गये थे, उनको उठाने-चढ़ाने, उतारने-खिसकाने, इधर-उधर ले जानेमें धक्के-चोटसे बंदरोंके हाथ-पाँव-पूँछ आदि बाहर निकले होनेसे दबकर टूट गये, घायल हो गये, गर्भवती बंदरियोंके गर्भपात हो गये, मरे हुए सड़े बंदरोंकी दुर्गन्धसे, भूख-प्यासमें भोजन-पानीकी अनियमिततासे वे अधमरे हो रहे थे । उनकी दुर्गन्धसे कार्यकर्ता भी असह्य घृणासे लापरवाहीसे उन बक्सोंको ढकेलते-पटकते थे । कितने ही बंदर ऐसी दुर्व्यवस्था एवं दुर्व्यवहारसे भय, ग्लानि, प्रलयंकर परिस्थितिसे दस्त, निमोनियाँ आदि बीमारियों तथा विषमय दुर्गन्धसे मौतके मुँहमें समा गये, जो जिंदा बचे थे वे भी मुर्दार थे ।

१६ सितम्बर १९५५ के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में समाचार छपा था कि भारतने प्रतिवर्ष ढाई लाख बंदर निर्यात करनेका वादा किया है जो इंग्लैंड, अमेरिका, फ्रांस, पोलैंड, कनाडा, स्वीडन, जर्मनी, बेल्जियम, इटली, डेनमार्क, गेम्बिया देशोंमें भेजे जायँगे । उन देशोंमें वैज्ञानिक लोग बालपक्षाघात आदि रोगोंकी दवा शोधनेके निमित्त इन बंदरोंपर अनेक प्रकारके प्रयोग, अनेक अङ्गोंकी चीर-फाड़कर उनपर एक्स-रे, बिजली-ताप, इजेक्शन, हिलडुल न सकनेकी अवस्थामें बाँध-लटकाकर, अति ठंडे पानीमें डुबाने, और चीर-फाड़के अनेक निर्दय प्रयोग करेंगे, जिनकी आप और हम कल्पना नहीं कर सकेंगे और वर्णन सुनकर काँप उठेंगे । रॉकेटमें उन्हें दूर ऊँचे आकाशमें उड़ाने आदिके प्रयोग किये जायँगे, उनमें अनेक बीमारियाँ उत्पन्न की जायँगी, यह देखनेके लिये कि इन प्रयोगोंका उनपर क्या प्रभाव होता है । Testing the effects of radio-active material after atomic explosions; exposure to poison gases, blast from high explosives, X-ray, Rodon seeds implanted in brain, cosmic rays applied 15-20 miles high in plastic balloons cerebral operation with or without anaesthesia, producing epileptic attacks by multiple injections into brain substance, leucotomy after severe neurosis, projection 40 miles high in space rockets, producing cancer, epidemic dropsy, trachoma of eyes, gastric ulcer, guinea worm infestation, polio myelitis, rheumatism, severe shock from fatigue, extreme cold or injury, sunstroke, displacement of various organs by operation, infection with anthrax, malaria, mumps, rabies, syphilis, yellow fever and with many other kinds of micro-organisms and viruses, the testing of toxic drugs.

अर्थात् बम विस्फोट कर उनपर रेडियो-सक्रिय प्रभाव देखना, उनको जहरीली गैसभरी जगहमें बंद करना, बम

घड़ाकोंका उनपर प्रभाव, दूर ऊँचे आकाशमें उन्हें प्लास्टिक-के गुब्बारेमें बंदकर उनपर दिव्य किरणोंका प्रभाव देखना, जिसके विषयमें वैज्ञानिक अबतक कुछ नहीं जान पाये, बेहोशी अथवा होशकी हालतमें उनके मस्तिष्ककी गहरी चीर-फाड़कर उनमें भीतर अनेक विषाक्त इंजेक्शन देकर मृगी रोग पैदा करना, उनमें श्वेत-रक्त-कण नष्ट कर देना, उन्हें रॉकेटमें चालीस मील ऊँचे आकाशमें भेजना, उनमें कैंसर, जलोदर, आँखोंमें छाले फोड़े उत्पन्न कर देना, पेटमें घाव बना देना, नारू रोगके कीटाणु डाल देना, बालपक्षाघात और वात-दर्द पैदा कर देना, उन्हें परेशानकर बेहद थकाकर बिजली प्रयोगसे चमका देना, बेहद ठंडमें डालना, बेहद पीड़ा देना, लू लगा देना, चीर-फाड़ करके उनके अंदरके अङ्गोंको शरीरमें इधर-उधर अन्यत्र जोड़ देना, शरीरपर फफोले, सूजाक-गर्मी, मलेरिया, पीला बुखार पैदा करना, अनेक प्रकारके विषाक्त कीटाणु और दवाएँ उनमें प्रवेशकर अनेक रोग पैदा करके उनपर सबका प्रभाव देखना, इन्हीं सब प्रयोगोंके लिये उन्होंने भारतसे बंदर माँगे। परंतु यह सब विस्तारसे न बताकर उन्होंने, 'वैज्ञानिक प्रयोगके लिये' कहकर बंदर प्राप्त किये। यदि बंदर पकड़नेवालोंको इन सब निर्दय प्रयोगोंका पता होता तो सम्भवतः कोई कितना भी गरीब व्यक्ति होता, बंदर पकड़नेकी ऐसी नौकरी न करता और दो-तीन रूपयेके लिये इन वैज्ञानिक हत्याओंमें भाग न लेता, बंदर न पकड़ता, न बेचता। बादमें समाचार प्रकाशित हुआ कि भारतने बंदरोंके निर्यातपर रोक लगा दी है तो अमेरिकी बालपक्षाघात-संस्थाके एक अधिकारी श्रीओटो किर्कमेन भारतके निर्णयपर बोल उठे कि 'ऐसी रोक लगाना मानवके प्रति बड़ा अपराध है।' It is a crime against humanity. अर्थात् बंदरोंको कल्पनातीत दुःख देनेके प्रयोग, उनकी वैज्ञानिक भाषामें, मानव-कल्याणके लिये किये जाते हैं। रोक लगानेसे मानव-कल्याणमें बाधा पहुँचती है।*

इन सब प्रकारके वैज्ञानिक निर्दय प्रयोगोंमें वैज्ञानिकोंकी शैतानी बुद्धि एवं घृणित स्वार्थी उद्योगको देखिये कि अपने कुकर्मसे उत्पन्न रोग-पाप धोनेके लिये ये निरपराध चूहे, बिल्ली, खरगोश, भेड़, बंदर, गधे, खच्चर, घोड़े, गाय, साँड़ और सूअरोंमें ढूँढ़ते हैं और उनके शरीरमें रोगी विषाक्त रक्त मवाद ठूँसकर सड़ाद पैदाकर, वैज्ञानिक रस-रसायनके घृणित मिश्रण करके सब देशों और धर्मोंके लोगोंको वैज्ञानिक चमत्कारी रसायनके नामसे महँगे मूल्यमें देकर, बेचकर तथा जबर्दस्ती कानूनसे अबोध बच्चोंके खूनमें घोलकर गंदा करते हैं! पाँच सौ रुपयेमें घोड़ा खरीदकर कोई व्यापारी उसे छः या सात सौ में बेच सकता है परंतु ये वैज्ञानिक उस पूँजीसे घोड़ेके रस-रक्त-मवादसे लाख रुपये तक बना लेते हैं। विज्ञानका यह गोरखधंधा रहस्यमय, और अन्न-साग अथवा किसी भी खेती या व्यापारकी अपेक्षा बेहद लाभ और इज्जत देनेवाला है!

वैज्ञानिक वेदान्त

ये लोग जानवरोंमें आत्मा नहीं मानते, मानवमें भी नहीं। विज्ञान आत्मा-परमात्मा, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, परलोक, दुःख-दर्द कुछ नहीं मानता। उनकी खोजमें इनका कहीं कुछ पता नहीं मिला। मिले केवल विषाक्त कीटाणु! इसलिये वे सब प्रकारके निर्दय दुष्ट कर्म करते हैं, उनका कुछ नहीं बिगड़ता। यदि परमात्मा पकड़में आ जाय तो उसपर भी मनमाने प्रयोग करके ये अपने सब अरमान पूरे करने लगें। विज्ञानकी परिभाषामें किसी भी प्राणीका शरीर घास, पानी, मिट्टीके संयोग-से बने मांसका चलता-फिरता स्वचालित पुतला या रासायनिक यन्त्र है। जिसका कोई कल-पुर्जा बिगड़ टूट-फूट कमजोर या अधिक थककर बेकार हो जानेसे सारा कारखाना बंद हो जाता है और उस शरीरमें उस अंग-यन्त्रके स्थानपर अन्य सजातीय अथवा विजातीय, योग्य प्राणीका अंग जमाकर लगा देनेसे या खून दे देनेसे उपयोगी स्वस्थ बनाया जा सकता है। इस विषयमें कोलम्बिया विश्वविद्यालय, अमेरिकाके डॉ॰ बोरिकने 'मैन, द केमिकल मशीन' (Man, the Chemical Machine) नामक पुस्तक लिखी है जो ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेससे लगभग बीस रुपयेमें प्रकाशित मिलती है। मनुष्य मुख्यतः सोलह प्रकारके रासायनिक तत्त्वोंके समन्वयसे बना है जो सभी घातक विष हैं, अपने शरीर-पोषणके लिये मनुष्य उन तत्त्वोंको अलग-अलग मूलरूपमें खाये, पीये, स्पर्श करे, सूँघे तो मर जाय अथवा रोगी हो जाय।

पशुओं, अनाथालयके बच्चों, गरीब मनुष्यों, रोगियों, कैदियों और पागलोंपर ये अपना पूरा अधिकार मानते हैं,

* समुद्री जहाजोंसे बंदर-निर्यात बंद किया गया है। अब केवल हवाई जहाजोंसे ही बंदरोंका निर्यात होता है। काफी महँगा पड़नेपर भी कम-से-कम चार-पाँच हजार बंदरोंका निर्यात दिल्लीसे हर महीने हो रहा है।XX ('सन्मार्ग' वाराणसी ४ जुलाई सन् १९६१)

मनमाने प्रयोग करते हैं कि इन सब प्राणियों और मनुष्योंका जीवन स्वयं अपने लिये किसी उपयोगका नहीं, इसलिये सभ्य जगत्‌के श्रेष्ठ मानवोंके हितार्थ इनपर सब प्रकारके प्रयोग करके कल्याणकारी संजीवनी प्राप्त करनी चाहिये, जिससे मेधावी, महत्त्वपूर्ण मानवोंको स्वास्थ्य और दीर्घायु प्राप्त हो सके। ऐसे सब अट्ठाईस लाख जंतुओंपर चीर-फाड़ आदिके प्रयोग प्रतिवर्ष केवल ब्रिटेनमें होते हैं, जिनपर 'दुःख पीड़ा दिये बिना' चीर-फाड़ करनेका कानून है। यदि प्रयोगके समय प्राणीको अत्यन्त पीड़ा मालूम हो तो उसकी पीड़ाका अन्त करनेके लिये 'तुरंत मार डालने' का कानून है, इसका नाम है, पशुओंपर निर्दय व्यवहारका प्रतिबंध (Prevention of cruelty to animals act.)। यदि कोई मालिक अपने पालतू पशु गाय, बैल, गधे, घोड़ेसे काम लेते समय निर्दयतासे अनावश्यक पीटे, रोग या वृद्धावस्थाकी कमजोरीमें जबरदस्ती काम ले, यातना दे तो यह निर्दय व्यवहार पुलिसद्वारा सूचना होनेपर मुकदमा चलाकर मालिकको दंड होता है। परंतु वैज्ञानिकोंपर न तो मुकदमा चलता है, न दण्ड होता है, बल्कि धन-संग्रह सहायता देकर उत्साह बढ़ाया जाता है, कानूनसे उनकी रक्षा की जाती है; क्योंकि ये मानव-कल्याणके लिये हत्यारे प्रयोग करते हैं। भारतमें भी यह कानून व्याप्त है। इंग्लैंडमें चीर-फाड़ आदिके प्रयोगकी इस कानूनकी दृष्टिसे देखभाल करनेके लिये पाँच इन्स्पेक्टर नियुक्त हैं। प्रत्येकके हिस्सेमें प्रतिदिन लभभग डेढ़ हजार चीर-फाड़के मामले पड़ते हैं, अर्थात् एक मिनटमें एक व्यक्ति चालीस ऑपरेशन कैसे देखता होगा और उनके दुःख-दर्दका उसे क्या अनुभव होता होगा! ऐसे कानूनकी बलिहारी! इसके पाखंडकी कल्पना कीजिये। भारतसे बंदर भी इसी शर्त-पर भेजे जाते थे कि इन्हें यातना न दी जाय, परंतु बाद रहस्य मालूम होनेपर जनताद्वारा विरोधी हल्ला-गुल्ला सुनकर सरकारने निर्यात रोक दिया।

जानवरोंकी चीर-फाड़ गहरी और बड़ी निर्दय होती है। खरगोशकी आँखोंमें आँसू लानेवाले पदार्थ, राईका गैस तथा अन्य उत्तेजक या मारक प्रभावोंके लिये अफीम, गंधक आदिसे बनी चीजें डाली जाती हैं, सिरको कुचला जाता है, नुकीले अस्त्र गहरे चुभाये जाते हैं। प्रतिक्रिया देखनेके लिये। वैज्ञानिक कहते हैं कि आँखोंको इन प्रयोगोंसे कोई नुकसान नहीं होता। यदि सचमुच ऐसी बात है और दुःख-दर्द कोई चीज नहीं है, झूठ है तो स्वयंपर ऐसा प्रयोग करके स्वयं अनुभव क्यों नहीं लेते?

इन सब चीर-फाड़ आदि करनेमें किरायेके लोग—कर्मचारी परेशान होकर अपनी कठिनाइयों और समस्याओंकी चर्चा अपनी संस्थासे प्रकाशित होनेवाले वैज्ञानिक मासिक या त्रैमासिक पत्रोंमें किया करते हैं। The nature of experiments to which the animals are subjected is revealed in the scientific journals by the vivisectors themselves.

आपका पाप !

इतनी सब निर्दय हत्याएँ मानव-कल्याणके लिये होते हुए, उनके प्रयोगसे मानवका अबतक कितना रोग-दुःख दूर हुआ, कितना कल्याण हुआ? इन वैज्ञानिकोंकी निर्दय परम्पराका कभी अन्त भी होगा? इसपर वैज्ञानिकोंकी दलील है—बीमारी आप अपने स्वयं असंयम, अज्ञान और पापसे बुलायें अथवा विश्वव्याप्त कीटाणुओंसे हो, हम आपका पाप धोने और रोग दूर करनेके लिये ही इन निर्दय कर्मोंके द्वारा आपकी सेवा-भलाईके लिये संजीवनी ढूँढ़ते हैं, अतएव इन सब तथाकथित हत्याओं और पापोंकी जिम्मेदारी आपपर ही है, हम तो आपके लिये ही पाप करते हैं, आप न करें तो हमें क्यों करना पड़े? इसी पाप-परम्परासे मुक्त होनेके लिये विज्ञानको आपलोग टैक्स और नगद दान-दक्षिणा देते हैं; दवाका मूल्य, अपने ऑपरेशनकी फीस जुर्मानाके रूपमें आप देते हैं और अपने रोग-दुःखके समय घर या अस्पतालमें बिस्तरपर पड़े, जेलके पर्याय, अपंग, लाचार, कमजोर, असहाय, जडवत् बने हुए अपने पापकी सजा भोगते हैं। हम आपके उपचार, उपकार, सेवाके लिये जो कुछ भी करें, उसे आप पाप कहें, तो वह हमारा नहीं, आपका ही पाप है, आपके कर्मका प्रतिबिम्ब है!

अनाथोंपर !

अपने निर्दय प्रयोगोंके लिये इन्होंने अनाथ बच्चोंको भी नहीं छोड़ा; बिना माँ-बापके, लाचार बच्चोंपर भी इन्हें दया नहीं आयी। इंग्लैंडसे प्रकाशित होनेवाले पुराने विख्यात और प्रमाणित डॉक्टरी अखबार 'लान्सेट' के १४ नवंबर १९५३ के अंकमें एक अनाथालयके बच्चोंपर किये गये प्रयोगोंका निम्नलिखित समाचार छपा था।

१. अनाथालयमें बच्चोंको 'एजीन' रसायनकी मात्राएँ उनकी हानिकारक प्रतिक्रिया देखनेके लिये दी गयी थीं।

Potentially harmful doses of 'agene' were given to children in an orphanage to see whether such doses were toxic.

२. मस्तिष्कमें असाध्य गाँठोंवाले रोगियोंके शरीरमें छेदकर दवाएँ प्रविष्ट की गयीं कि इनसे क्या हानि होती है।

Patients with incurable cerebral tumours experimented with intrathecal aureomycin to find whether it was injurious. The experiment involved multiple lumbar punctures.

३. बच्चोंको प्रगाढ़ घातक, बेहोशीमें लाकर यान्त्रिक विधिसे ग्राफ-चित्र लेकर प्रतिक्रियाका अनुभव लेनेके लिये प्रयोग किये गये।

Reproduced dangerous syncopal attacks in children to obtain graphic records.

पाठको ! इस विज्ञानकी चमत्कारी चीजोंको आप क्या समझे ? आगे पढ़ते चलिये !

सौराष्ट्रकी प्रसिद्ध गीर जातिकी गायोंका अमेरिकाके लिये निर्यात

'राजकोटके महाजन पिंजरापोलमें सौराष्ट्रकी प्रसिद्ध गीर जातिके सर्वोत्तम गाय, साँढ़ और बछड़े—कुल मिलाकर ७० पशु भारतसरकारके परमिटसे भारत-सरकारकी मिनिस्ट्री आफ एग्रीकल्चर विभागके लोगोंके द्वारा चौंका देनेवाली कीमतसे खरीदकर रक्खी गयी हैं,' इस समाचारके मिलनेपर बम्बईकी जीवदया-मण्डलीके द्वारा सरकारी पशुविभागसे पूछनेपर पता लगा कि ये गायें अमेरिका भेजनेके लिये अमेरिकन अधिकारियोंद्वारा एक-एक गायका एक हजारसे पाँच हजार रुपयेतक मूल्य देकर खरीदी गयी हैं और उन्हींकी ओरसे राजकोटके महाजन पिंजरापोलमें रक्खी गयी हैं। भारतसरकारके द्वारा उनको कुल ७० गीर जातिके गोवंश तथा ३० अंगोल जातिके गोवंश अमेरिका ले जानेके लिये परमिट दिया गया है।

ब्राजिल-अमेरिका और यूरोपके अन्य देशोंमें भारतकी किसी भी जातिकी गायकी अपेक्षा अधिक दूध देनेवाली गायें हैं। अतः भारतका गो-वंश उनके दूध बढ़ानेके लिये बेकार है। फिर यूरोप तथा अमेरिकामें गोसंवर्धन केवल दूधके लिये ही नहीं, गोमांसके लिये भी होता है। उन्हें खेतीके लिये बैलोंकी जरूरत नहीं है। अतः जो बछड़े पैदा होते हैं, उनको मांसके लिये ही कत्ल किया जाता है। अतः उनके लिये शरीरमें ज्यादा वजनदार और अधिक दूध देनेवाली गायें ही कामकी हैं। यूरोप-अमेरिकाकी गायोंकी अपेक्षा हिंदुस्थानकी काँकरेज, गीर और अंगोल जातिकी गायें ज्यादा वजनदार हैं। इसलिये वे भारतसे इन जातिकी गाय और साँढ़ प्रकारान्तरसे ले जाते हैं और उनके द्वारा अपनी गायोंमें भारतकी गायोंका उपर्युक्त मांसका गुण पैदा करते हैं। परंतु यह सारा परिश्रम होता है आखिर गोमांसके लिये वजनदार और टिकाऊ गोवंशके निर्माणके उद्देश्यसे ही।

× × ×

दुर्भाग्यवश स्वराज मिलनेके बाद विदेशी मुद्राकी भूख बढ़ जानेके कारण जबसे भारतसरकारने भारतकी चाहे जिन वस्तुओंका निर्यात करके विदेशी मुद्रा कमानेकी नीतिको अपनाया है, तभीसे भारतके पशुओंपर लोगोंकी दृष्टि गयी और तभीसे बंदर तथा दूसरे अनेक जातिके प्राणियोंका निर्यात चालू हो गया ! इसीके साथ-साथ पशुओंकी प्रधान खूराक भूसा, खली तथा गुँवारका निर्यात भी शुरू हो गया और अब तो पशुधनका भी निर्यात होने लगा ! सन् १९४९ में जब भारतसरकारकी मिनिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चरकी ओरसे गायोंको विदेश भेजनेका प्रयास किया गया था, तब बम्बईकी जीवदया-मण्डली, भारत-गो-सेवक समाज, बम्बईकी राज्यगोशाला,

पिंजरापोल-संघ आदिके विरोध करनेपर गुजरातसे वैसे पशुओंके निर्यातपर पाबंदी लग गयी थी। परंतु पीछेसे भारतसरकारने मद्रास आदि स्थानोंसे पशुओंको ले जानेकी पर्याप्त सुविधा प्रदान कर दी और अब तो गुजरात राज्य तथा सौराष्ट्रसे भी प्रसिद्ध जातिके पशुओंका निर्यात भी भारतसरकारने आरम्भ कर दिया !

वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियोंसे ऐसे सर्वोत्तम जातिके पशुओंकी विदेशोंको निकासी भारतके गोसंवर्धन-कार्यके लिये बड़ी ही विघातक है। एक ओर तो देशके अनेक राज्योंमें गोवध तथा उपयोगी पशुओंकी हत्यापर कानूनसे प्रतिबन्ध लग रहे हैं, दूसरी ओर हत्याके लिये देशके सर्वोत्तम पशुओंको विदेश भेजनेकी छूट दे दी गयी है ! यह कितनी हानिकी बात है। देशमें आज उपयोगी नस्लकी सर्वोत्तम गायोंकी कमी है। सरकार और जनताके द्वारा नस्ल-सुधारके लिये गोसंवर्धनकी योजना बनायी गयी है। ऐसी अवस्थामें देशकी गिनी-चुनी सर्वोत्तम जातिके गोवंशको विदेश भेज देना—यह बड़ी आत्मघातिनी नीति है। इससे गोसंवर्धनकी योजना निष्फल हो जायगी।×××इन गायोंको अमेरिका भेजनेके लिये सुविधा दिया जाना, देशहितका द्रोह है। गुजरातसे भारतके दूसरे भागोंमें गाय ले जानेपर प्रतिबन्ध है, परंतु अमेरिकाके लिये परमिट दिया जाता है, यह अन्याय है !

बम्बईकी जीवदयामण्डलीने इस निकासीको रोकनेके लये भारतसरकार तथा गुजरात-सरकारसे विनती की है। गोभक्त जनता और संस्थाओंको भी इस विषयमें कड़ा विरोध करना चाहिये तथा एक भी पशु विदेश न जाय, इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। (श्रीजीवदया, जून १९६१)

चिन्तन-कण

(लेखक—श्रीबालकृष्ण बलदुवा, बी० ए०, एल्-एल् बी०)

१

जड और चेतनमें एकमात्र अन्तर गतिका है। इसीलिये प्रगतिका महत्त्व है। इसीलिये अधोगतिसे बचनेकी सावधानी है।

२

कहीं भी किसी भी ऊँचाईतक पहुँचनेमें श्रम पड़ता है। इसीलिये ऊँचाईकी कीमत है—महत्त्व है।

३

साधु बनो ! साधुवेशकी जरूरत नहीं है।

४

मानतक पहुँचनेका रास्ता अपमानकी गलियों होकर ही तो है।

५

मुक्तिके लिये विवेक और भोगके लिये पुरुषार्थकी जरूरत है।

और भगवान्‌की—परमात्माकी जरूरत है आत्माकी टूटती हुई आस्थाको टेक देनेके लिये, अन्तरमें बसे आदर्शको अविशृङ्खलित रहने देनेके लिये।

प्राचीन वैदिक सभ्यता बनाम भारतमें 'आर्य'-अभियान

[आर्यजातिके बाहरसे भारतमें आनेकी कहानी सर्वथा मिथ्या है]

(लेखक—श्रीनीरजाकान्त चौधरी देवशर्मा)

द्वितीय महायुद्धके समय कलकत्ताके किसी एक कार्यालयमें दो यूरेशियन सैनिक प्रकटरूपमें हिंदूधर्म और सभ्यताकी निन्दा कर रहे थे। एक बार वे बात-ही-बातमें बोले—'हिंदू जाति कब स्वाधीन रही ? यह तो सदा ही दूसरोंका तलवा चाटती रही है।' वहाँ कुछ हिंदू-संतान भी उपस्थित थे, परंतु प्रतिवाद करना तो दूर रहा, केवल एक आदमीको छोड़कर किसीने मुँहतक नहीं खोला।

एक सज्जनको इतिहासका कुछ ज्ञान था और वे कुछ स्वतन्त्र विचारक थे, उन्होंने दोनों यूरेशियनोंको बतला दिया कि हिंदू जाति सदा ही स्वाधीन रही तथा ब्रिटिश जाति सदा पराधीन रही। उन्होंने जो युक्तियाँ और प्रमाण उपस्थित किये, उसके सामने उन दोनों अफसरोंको निरुत्तर हो जाना पड़ा।

परंतु यह सत्य है कि समस्त वैदिक या भारती * (हिंदू) जाति आज वस्तुतः आत्मविस्मृत है। हममें आज कितने अपने देशके वास्तविक इतिहासको जानते हैं ? इसके अतिरिक्त, स्वदेशकी प्राचीन संस्कृति और भावप्रवाहके साथ हमारा सम्बन्ध क्रमशः क्षीण और विच्छिन्न हो जानेके कारण हम अपने समस्त जातीय गौरव और जात्यभिमानको खो चुके हैं !

भारत और भारती (हिंदू) जाति सदा ही स्वाधीन रही है, इस बातको हमारे ही देशमें हम आज नहीं जानते-मानते। वैदिक जाति संसारमें अग्रगण्य और सर्वश्रेष्ठ है, यह मनोभाव भी हमारे हृदयसे प्रायः लोप होता जा रहा है। इसका प्रधान कारण है पाश्चात्त्य शिक्षा और उसके फलस्वरूप पाश्चात्त्य सभ्यता, समाज और राजनीतिके प्रति हमारा बढ़ता हुआ अनुराग और श्रद्धा एवं अपने तथा अपने पूर्वजोंके प्रति दीनताका भाव !

भारत सदा ही स्वाधीन रहा है, इस प्रसङ्गमें पहले यह स्थिर करना आवश्यक है कि वैदिक जाति क्या बाहरके किसी देशसे यहाँ आयी है। मुख्यतः ऐतिहासिक प्रमाणोंके द्वारा इस विषयकी संक्षेपमें आलोचना की जाती है।

वैदिक जाति भारतीय है, बाहरसे नहीं आयी है

आधुनिक पाश्चात्त्य मतके अनुसार भारतके इतिहासका प्रारम्भ निर्दिष्टरूपसे अनुमानतः ३३० ई० पूर्व अर्थात् दिग्विजयी सिकन्दरके भारत-आक्रमणसे होता है। इसके पूर्वका जो कुछ ज्ञान है, उसे वास्तविक इतिहासका नाम नहीं दिया जाता।

* 'भारती यत्र संततिः' (विष्णु० २।३।१)

मेगास्थनीजका कथन

सिकन्दरकी मृत्युके बाद उसके सेनापति सैल्यूकसने पश्चिम एशियामें साम्राज्य स्थापित किया। उनके राजदूत मेगास्थनीज लगभग ३०४ ई० पूर्व मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तकी राजसभामें कुछ दिनोंतक रहे थे। उन्होंने एक 'यात्रावृत्तान्त' लिखा है, परंतु खेदकी बात है कि वह इस समय पूर्णरूपमें पुस्तकाकार नहीं मिलता। तथापि उसका कुछ-कुछ अंश उसके परवर्ती लेखक स्ट्राबो अरियन आदिकी पुस्तकोंमें उद्धरणके रूपमें पाया जाता है।

इसमें एक स्थानपर मेगास्थनीजने लिखा है कि 'समस्त भारत एक विराट् देश है और उसमें बहुत-से विभिन्न जातिके लोग बसते हैं। इनमें एक भी आदमी मूलतः विदेशी वंशोत्पन्न नहीं है। स्पष्ट जान पड़ता है कि सभी भारतके आदिम अधिवासियोंके वंशधर हैं। इसके अतिरिक्त भारतमें कभी विदेशियोंका कोई उपनिवेश स्थापित नहीं हुआ और न भारतने कभी विदेशमें किसी देशमें जाकर उपनिवेश स्थापित किया।' *

आधुनिक पाश्चात्त्य ऐतिहासिक तथा पुरातत्त्ववेत्ताओंके मतसे 'अनुमानतः २५०० से १५०० ई० पूर्वतक आर्यजाति दलोंमें उत्तर-पश्चिमी सीमान्तके रास्ते भारतमें प्रविष्ट हुई और उसने इस देशके आदिम निवासी द्रविड़ और कोल-भील आदि जातियोंको पराजित करके क्रमशः उपनिवेश स्थापन किया। यह आर्य हिंदू, पारसी, काकेशीय, ग्रीक और अन्यान्य

* It is said that India, being of enormous size when taken as a whole, is peopled by races both numerous and diverse, of which not even *one* was originally of foreign descent, but all were evidently indigenous; and moreover that India neither received a colony from abroad, nor sent out a colony to any other nation.

—(Mac Crindle: 'Ancient India, Megasthnese', p. 34)

यूरोपीय जातियोंके पूर्वज थे। भारतके बाहर किसी स्थानमें इनकी प्राचीन निवासभूमि थी।'

यह यदि सचमुच सत्य है तो आर्योंका भारतमें वह अभियान मेगास्थनीजके भारतमें आनेके प्रायः १२०० वर्ष पूर्व हो चुका था। परंतु मेगास्थनीजने जोर देकर कहा है कि भारतके एक भी आदमीके पूर्वपुरुष बाहरसे नहीं आये तथा भारतमें विदेशी जातिका उपनिवेश भी कभी स्थापित नहीं हुआ।

मेगास्थनीज एक उच्चपदस्थ, निरपेक्ष, अभिज्ञ और बुद्धिमान् पुरुष थे। उनकी बात उड़ा देने योग्य नहीं हो सकती। उनके लेखके अन्यान्य अंशोंको देखनेसे जान पड़ता है कि वे भारतमें कुछ दिन रहे थे। उनके विवरणकी बहुतेरी बातें विश्वास करने योग्य हैं। उनका वर्णन पक्षपातशून्य है तथा सत्य माना जा सकता है। उससे अनेक विषयोंका विशुद्ध प्रमाण मिलता है।

प्रथमतः, आजसे प्रायः २३०० वर्ष पूर्व भारतमें किसीको यह ज्ञात न था कि भारतीय (आर्य या वैदिक) बाहरके किसी देशसे भारतमें आये थे। बल्कि सभी यही बात जानते और मानते थे कि प्रत्येक भारतवासी भारतके आदिम अधिवासीका वंशज है।

द्वितीयतः, बाहरकी किसी जातिने कभी भारतमें उपनिवेश स्थापित नहीं किया, अर्थात् भारत कभी विदेशी जातिसे परास्त नहीं हुआ, सदा ही स्वाधीन रहा।

तृतीयतः, भारतने कभी भी दूसरे देशमें उपनिवेश स्थापन नहीं किया। अर्थात् दूसरोंका राज्य छीननेकी कभी चेष्टा नहीं की। यह भारतकी राजनीतिकी चिरन्तन धाराके अनुरूप था, इसमें संदेह नहीं। इसके अतिरिक्त भारतके बाहर आसपासके देशोंमें वैदिक जाति और सभ्यता उस समयतक थी, यह इतिहासकी आलोचनासे ज्ञात होता है।

भारतीय वैदिक जाति इसी देशमें उत्पन्न हुई है, यह बात यदि सत्य है तो इससे यह निश्चित है कि भारतमें तथाकथित 'आर्य'-अभियान कभी हुआ ही नहीं। नहीं तो, एक हजार वर्षके भीतर आर्य-अभियानकी बात लोग (मेगास्थनीजके समयमें) पूर्णतः विस्मृत नहीं होते।

वैदिक (भारती) जातिकी स्मृति-शक्ति दुर्बल है, यह बात आजतक कोई भी वैदेशिक विपक्षी मनुष्य नहीं कह सका। जो लोग सहस्रों वर्षोंतक वंशानुक्रमसे सारी श्रुतियों तथा अन्यान्य शास्त्रोंको ठीक-ठीक कण्ठस्थ रख सकते थे, उनकी स्मृतिशक्ति दुर्बल नहीं थी। ऐसे पण्डित अब भी दक्षिणमें हैं, जिनको समस्त वेदमन्त्र कण्ठस्थ हैं। पहले श्रुतिधर कवि बहुत होते थे। थोड़े ही दिनों पहलेकी बात है कि पण्डितराज जगन्नाथ तर्कपञ्चाननने गङ्गाके तीरपर दो गोरे अंग्रेजोंका विवाद सुना था। उनकी भाषाके वे जानकार नहीं थे, तो भी न्यायालयमें साक्षी देनेके लिये बुलानेपर उन्होंने ज्यों-की-त्यों उनके विवादकी आवृत्ति कर दी थी, यह बात प्रसिद्ध है। शतावधान पुरुषोंकी तो इस समय भी भारतमें कमी नहीं है।

विशेषतः पूर्वकालमें पितृकार्य भी देवकार्यके समान ही विशेष आवश्यक समझा जाता था। आजकल बहुत लोग माता-पिताका वार्षिक श्राद्ध भी नहीं करते हैं, परंतु आजसे १००-२०० वर्ष पूर्व प्रति अमावस्या तिथिको बहुत लोग श्राद्ध करते थे। तर्पण तो नित्यकर्म था। इस कारण लोग पूर्वपुरुषोंके नाम और उनकी बात याद रखते थे। अश्वमेध यज्ञमें जो ऋत्विग् वरण किये जाते थे, उन्हींको ऊपरकी चौदह पीढ़ीतक स्त्री-पुरुषोंका नाम बोलना पड़ता था। किसी पुरुषको सवर्णा भार्या न रखनेका नियम था। इसके विपरीत बर्तनेवाले ब्राह्मण अश्वमेध यज्ञमें याजन करनेके लिये उपयुक्त नहीं माने जाते थे।

अभी उस दिनतक घटक (ब्याह करानेवाले) ब्राह्मण चौदह पीढ़ीतककी वंशावली ठीक रखते रहे हैं। राजपूतानेमें विवाहके अवसरपर दोनों पक्षोंके पुरोहित आज भी चौदह पीढ़ीके ही नहीं, कहीं-कहीं तीस-चालीस पीढ़ियोंके नामोंका वर्णन करते हैं। इसे शाखोच्चार कहा जाता है। पहले भारतमें अकालमृत्यु कम होती थी। साधारणतः सौ वर्षमें तीन पुरुष समझे जा सकते हैं। इस हिसाबसे चौदह पीढ़ियोंमें प्रायः ४६६ और चालीस पीढ़ियोंमें १३३३ वर्ष होते हैं। अर्थात् साधारण लोग भी मुँहामुँही सैकड़ों वर्षोंके पारिवारिक इतिहासका ज्ञान रखते थे। निवासस्थानकी बात भी उनको ज्ञात रहती थी।

यह किंवदन्ती है कि बंगालके राढ़ी-वारेन्द्र ब्राह्मणोंके पूर्वपुरुष भट्ट नारायण आदि पाँच ब्राह्मण बंगालके राजा आदिसूरके आमन्त्रणसे कान्यकुब्जसे बंगालमें आये थे। उत्तर प्रदेशके कनौजिया ब्राह्मणोंके गोत्र-प्रवर बंगालके ब्राह्मणोंके गोत्र-प्रवरसे मेल खाते हैं। इससे इस किंवदन्तीकी पुष्टि होती है। आदिपुरुष भट्ट नारायण छान्दड़ आदिसे प्रायः समस्त

पर्यायकी वंश-तालिका अबतक ठीक-ठीक मिलती है। बंगालमें आनेके बाद प्रायः तीस पीढ़ी बीतनेपर तीन पुरुष प्रतिशत वर्षके हिसाबसे आदि सूरके यज्ञके बाद आज प्रायः सहस्र वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

इसके अतिरिक्त, पिछली कई शताब्दियाँ भारतके इतिहासमें एक अभिशप्त और झंझावात-विध्वस्त अन्धकारमय युगके रूपमें बीती हैं। मुसलमान, पठान और मुगल, तथा तत्पश्चात् अंग्रेजोंकी पराधीनताका दुःख और अपमान देशको सहन करना पड़ा है। इस लगातार वैदेशिक आक्रमण और संघर्षणके बीच नारकीय ध्वंसलीला अराजकता और निरंकुश शासनके अत्याचारके फलस्वरूप वैदिक सभ्यताकी जड़ ही हिल गयी। देवमन्दिर नष्ट कर दिये गये, शास्त्र-ग्रन्थ-भण्डार जला डाले गये, कुलके कुल नष्ट कर दिये गये या विधर्मी बना डाले गये। तथापि देखा जाता है कि प्रायः सहस्र वर्ष पूर्वके कुलपतियोंके नाम तथा उनके अन्य प्रदेशसे आगमनकी कहानी और तत्परवर्ती इतिहास विस्मृतिके गर्तमें लुप्त नहीं हुए।

किसी भी सुसभ्य जातिके लिये सैकड़ों-हजारों वर्षोंमें भी अपने आदिम स्वदेशकी बात भूल जाना सम्भव नहीं है। यहूदी जाति इसका जीता-जागता दृष्टान्त है। वर्तमान यहूदियोंकी संख्या एक करोड़से भी कम है और वे गत दो हजार वर्षोंसे (७० ई० तथा उससे ६०० वर्ष पूर्वसे ही) स्वदेशसे निर्वासित होकर सारे संसारमें फैल गये हैं। परंतु क्या उन्होंने एक दिनके लिये भी अपने स्वदेश (Promised land—Zion) पैलेस्टाइनको भुलाया है ? इस स्वधर्म और स्वदेश-निष्ठाके फलस्वरूप यहूदी जाति प्रथम महायुद्धके बाद पुनः पैलेस्टाइनमें स्वाधीन राज्य स्थापित करनेमें समर्थ हुई है और बहुसंख्यक यहूदी वहाँ लौट गये हैं।

वैदिक (आर्य) जाति यदि सचमुच २५००—१५०० ई० पूर्वके बीच बाहरसे भारतमें आयी होती तो अन्ततः लोग मुँहामुँही इसका प्रचार करते। १०००-१२०० वर्षोंमें ही उस बातको भूल जानेका कोई कारण नहीं दीखता।

एक सौ वर्ष पहले एल्फिन्स्टनने अपने भारतके इतिहासमें मेगास्थनीजकी इस विवृत्तिको उद्धृत करके लिखा है कि 'भारतीय हिंदुओंके पूर्वपुरुष कभी अपने आधुनिक निवास-स्थानके अतिरिक्त किसी दूसरे देशमें थे, ऐसा माननेका कोई भी कारण नहीं है। वेद, मनुस्मृति या मनुके पूर्व किसी भी ग्रन्थमें हिंदूजातिकी पूर्व निवासभूमिका कोई उल्लेख नहीं मिलता।'*

जिस समय एल्फिन्स्टनने यह लिखा था, उस समय तक भारतमें 'आर्य'-अभियानकी कहानी नहीं गढ़ी गयी थी। मैक्समूलर आदिकी गवेषणा प्रारम्भ होनेमें बहुत देर थी।

आधुनिक इतिहासकी किसी पुस्तकमें मेगास्थनीजकी इस उक्तिका उल्लेख तक नहीं है। इसका कारण यही है कि यह भारतमें 'आर्य-अभियान' की कहानीके बिल्कुल विरुद्ध है।

वेद या वैदिक शास्त्रमें आर्य-अभियानका उल्लेख नहीं है

वेदसंहिता आध्यात्मिक उपासनाके मन्त्र हैं। इसी कारण उनका एक नाम ब्रह्म है। किसी क्रमसे वेदमन्त्रोंको इतिहासके पर्यायमें नहीं डालना चाहिये।

ऋग्वेदका जो अंश इस समय उपलब्ध है उसमें १०१७ मन्त्र हैं। इनमें केवल ४० मन्त्रोंमें पार्थिव भाव और सभ्यता-विषयक कुछ संकेतका अनुमान किया जा सकता है। परंतु इन ४० मन्त्रोंको ऐतिहासिक गवेषणाकी भूमिका माननेपर भी भारतमें आर्य-अभियानकी समर्थक कोई भी युक्ति खोजनेपर नहीं मिलती। डा० कीथ वेद और भारतके ऐतिह्यके विषयमें एक सुविख्यात गवेषक माने जाते हैं। उन्होंने इस विषयमें जो विचार प्रकट किये हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं। वे लिखते हैं कि 'इस विषयके जो प्रमाण उपलब्ध हैं, उनसे कोई सिद्धान्त निकालनेमें अत्यन्त सावधानी अपेक्षित है। परंतु यह निश्चय है कि वैदिक भारतीय किस प्रकार भारतमें प्रविष्ट हुए, यह निर्धारित करनेमें ऋग्वेदसे कोई सहायता नहीं मिलती। हो सकता है कि आर्य अभियात्रीदल हिंदुकुशके दर्रेसे भारतमें प्रविष्ट हुए हों और पंजाब होकर पूर्व दिशामें बढ़े हों। परंतु यदि सचमुच ऐसी बात हुई हो, तो भी अभियानकी ऋग्वेदमें कोई छाया भी नहीं है।'*

* "It is opposed to the foreign origin that neither in the Code nor, I believe, in the Vedas, nor in any book that is certainly older than the Code is there any allusion to a prior residence, or a knowledge of more than the name of any country out of India."

—Elphinstone: 'History of India'

* "From these materials conclusions can be drawn only with much caution. It is however certain that the Ṛgveda offers no assistance in determining the mode in which the Vedic Indians entered India. If, as may be the case, the Aryan invaders of India entered by the passes of the Hindu Kush and proceeded thence through the Punjab to the East, still that advance is not reflected in the Ṛgveda."

– (Keith: 'Cambridge History of India' I. p. 78-9)

अधिकांश उत्साही पाश्चात्य गवेषकोंने कभी भारतमें पदार्पण-तक नहीं किया और कोषकी सहायतासे वेदोंको पढ़ा। उनमेंसे किसी-किसीने वेदमें अभियात्री आर्योंके साथ भारतके आदिम निवासी अनार्य जातिके युद्धका इतिहास खोज निकाला है। यहाँतक कि प्रसिद्ध आचमन-मन्त्र—'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्'—जिसे भारतकी कोटि-कोटि द्विज संतान सहस्रों वर्षोंसे प्रतिदिन अनेक बार आवृत्ति करनेपर भी कोई ऐतिहासिक तथ्य कभी नहीं पा सकी थी, अथवा श्राद्धके मन्त्र 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्'—से भी किसी-किसी गवेषकने आर्य जातिके आदि-निवास, उनके नेताके नाम-धाम, यहाँतक कि भारतमें आनेके मार्गमें कई स्थानोंपर ठहरनेका संकेत बहुत प्रयत्नपूर्वक निश्चित करके अपने आविष्कारके द्वारा भारत-संतानको अन्धकारसे प्रकाशमें लानेकी चेष्टा की है !

इनको तथा इनकी रचनाके आधारपर जो लोग अनायास ही दुरवगाह वैदिक साहित्यके विषयमें मन्तव्ययुक्त लेख लिखते हैं उनको, धुरंधर समालोचक डा० कीथके कथनपर ध्यान देना चाहिये।

ऋग्वेदमें 'आर्य' शब्दका उल्लेख तीन स्थानोंपर मिलता है। परंतु इसका अर्थ कहीं भी जातिवाचक नहीं है (१-१०३-३, ६-२५-२, १०-६५-११)।

श्रीयोगत्रयानन्द कहते हैं, 'इसके सिवा, वेदमें क्या है अथवा क्या नहीं है, यह जाननेके लिये उपयुक्त चक्षुकी आवश्यकता है। वेदमें वस्तु-तत्त्व बीजभावसे वर्तमान है, तथापि योगदृष्टिके बिना वेदका वास्तविक स्वरूप देख पानेकी आशा करना अनुचित है।' (उत्सव १३४०, ५२९ पृष्ठ)

इस विषयमें बहुत विस्तृत आलोचना हो सकती है। परंतु यह निश्चित है कि वेदमें, वैदिक शास्त्रमें या विराट् संस्कृत साहित्यमें कहीं भी बाहरसे 'आर्य' या अन्य जातिके आगमन या आदि 'आर्य-स्थान' का कोई संकेतमात्र भी नहीं है।

प्रस्तर-प्रमाण, हड़प्पा और मोहनजोदड़ो

सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् राखालदास वन्द्योपाध्यायके प्रयत्नसे लगभग अड़तीस वर्ष पूर्व जो महत्त्वपूर्ण अनुसंधान हुआ है, उसके फलस्वरूप सिन्धु देशमें मोहनजोदड़ो और हड़प्पामें अति प्राचीन सभ्यताका पता लगा है। पुरातत्त्ववेत्ता समझते हैं कि ये सब खण्डहर कम-से-कम २००० ई० पू० अथवा उससे भी अधिक प्राचीन हैं। गहरे स्तरमें जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, उनको देखकर यह निश्चय किया गया है कि ऊपरी स्तरकी अपेक्षा पूर्वकी सभ्यता अधिक उन्नत थी। अतएव ये सारे अवशेष सम्भवतः ई० ३००० पूर्वकी अपेक्षा भी प्राचीन-तर सभ्यताके प्रतीक हैं।

ऐतिहासिक और पुरातत्त्ववेत्ताओंने यह सिद्धान्त निश्चित कर रक्खा था कि भारतमें प्रथम 'आर्य'-अभियान २५०० ई० पूर्वके पहले नहीं हुआ था। परंतु इस अनुसंधानके फल-स्वरूप एक उलटी बात सामने आ गयी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पाकी खोजको यदि 'आर्य'-सभ्यताका चिह्न माना जाय तो इस अभियानके निश्चित सन्-संवत् गलत ठहरते हैं और यह अभियानकी कहानी भी कमजोर हो जाती है; क्योंकि पाश्चात्य मतके अनुसार २५०० ई० पूर्वके पहले भारतके अधिकारी असभ्य (कोल-भील आदि) थे।

सम्भवतः इसी कारण इस सभ्यताको 'सिन्धु-उपत्यकाकी सभ्यता' (Indus Valley Civilization) नाम देकर पृथक् करनेकी चेष्टा की गयी है। यह 'आर्य-सभ्यता' नहीं है। आर्य-अभियानके पूर्वकालीन किसी अनार्य परंतु सुसभ्य जातिके साथ इसको जोड़नेकी चेष्टा की गयी है। गर्डन चाइल्डका अभिमत है कि यह 'आर्य' नहीं परंतु भारतकी किसी प्राक् 'आर्य' जातिसे सम्बन्धित है।* किंतु हड़प्पा मोहन-जोदड़ोसे तीन सौ मील दूर है। फिर आगे चलकर सुदूर पश्चिम बिलोचिस्तानमें भी कुछ स्थानोंमें अनुरूप ध्वंसावशेष पाये गये हैं। अतएव इस सभ्यताको 'सिन्धु-उपत्यकाकी सभ्यता' नाम देना कहाँतक ठीक है, कहा नहीं जा सकता।

इसके सिवा मध्यभारतमें भी महेश्वर (प्राचीन माहिष्मती) तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें भी सुप्राचीन ध्वंसावशेषका क्रमशः आविष्कार हो रहा है और होगा। जान पड़ता है कि इन सब स्थानोंकी सभ्यताको 'आर्य' (वैदिक) सभ्यतासे पृथक् रूपमें दिखानेके लिये भविष्यमें 'नर्मदा-उपत्यकाकी सभ्यता' 'गाङ्गेय सभ्यता' आदि नाम देनेकी आवश्यकता पड़ेगी।

सिन्धु-उपत्यकाकी सभ्यता वैदिक है

मोहनजोदड़ो आदि स्थानोंमें खुदाईका कार्य बहुत थोड़ा हुआ था। अनुसंधानके लिये अभी बहुत कुछ बाकी रह

* "Not Aryans but connected with one of the pre-Aryan races of India."

—Gordon Childe: 'Aryans', p. 35.

गया है। वहाँके सील आदिके ऊपर जो लिपि पायी गयी है, उसका पाठोद्धार अभी नहीं हो सका है। इस कारण निश्चितरूपसे कुछ कहना नहीं बनता है। तथापि यह माननेके लिये पर्याप्त हेतु है कि यह सभ्यता वैदिक सभ्यताके साथ ही संश्लिष्ट थी।

(१) नासाग्रदृष्टि—प्रथमतः वहाँ नासाग्र-दृष्टि मूर्त्ति पायी गयी है नासाग्र या भ्रूमध्य दृष्टि भारतीय योगविद्याका एक सुपरिचित अङ्ग है। अवैदिक सभ्यताके कलाकार (ग्रीक-रोम आदि देशोंमें) इस अन्तर्दृष्टिका व्यवहार नहीं जानते। चीन-जापान आदि देशोंमें अवश्य ध्यानासीन बौद्धमूर्त्तिमें यह बात मिलती है परंतु बौद्धमत भारतीय वैदिकधर्मकी ही एक शाखा है।

(२) पशुपतिमूर्त्ति—वेदीके ऊपर योगासनमें बैठी एक त्रिशिरा साधक मूर्त्तिको चारों ओर अनेक पशु घेरे हुए हैं। सर जान मार्शलका विचार है कि यह पशुपति (शिव) मूर्त्ति है।* यदि यह न हो तो भी आसनका व्यवहार अवैदिक जातिमें नहीं देखा जाता।

(३) शिवलिङ्ग—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा दोनों ही स्थानोंके खण्डहरोंमें बहुत-से छोटे-बड़े लिङ्गाकृति पत्थर पाये गये हैं। किसी-किसीके विषयमें संदेहके लिये अवकाश होनेपर भी, उनमें अनेक शिवलिङ्ग-मूर्त्ति ही हैं, यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है।†

शिवलिङ्ग-पूजा वैदिक है

पाश्चात्त्य मिशनरी तथा लेखक बहुत दिनोंसे प्रचार करते आ रहे हैं कि शिवलिङ्ग-पूजा एक अश्लील प्रथा है।‡ यह वैदिक युगके बाद अनार्योंसे लेकर पूजा-पद्धतिमें गृहीत हुई है; परंतु प्राग्वैदिक किसी असभ्य जातिमें लिङ्ग-पूजा थी; इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता यह कल्पनामात्र है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि शिवलिङ्ग-पूजा वैदिक ऐतिह्य और उपासना-प्रणालीका एक प्रधान अङ्ग है।

वेदके 'शिश्नदेवाः' (८-२१-५, १०-९७-३) को लेकर बहुत लोग तर्क करते हैं। परंतु 'शिश्न' शब्द कभी शिवलिङ्गके अर्थमें व्यवहृत नहीं होता। सायणके मतसे 'शिश्नदेवाः' का अर्थ है 'अब्रह्मचर्याः' (काम-परायण, शिश्नोदर-परायण)। संध्याके आचमनके मन्त्रमें 'शिश्न' शब्द कामेन्द्रियके अर्थमें व्यवहृत हुआ है और 'उदरेण' शब्दके ठीक बाद ही।

मिडरका कथन है कि वैदिक ऋषिगणके समकालीन आदिम-निवासी जातियोंमें लिङ्ग-उपासना प्रचलित थी; इसका प्रमाण प्राप्त करनेमें चाहे कितनी ही सुविधा क्यों न हो, यह मानना ही पड़ेगा कि 'शिश्नदेवाः' शब्दसे यह प्रमाणित नहीं होता।*

आदिलिङ्ग प्रणवात्मक है, इससे नाद या शब्द-ब्रह्मका प्राकट्य हुआ। यह तटस्थ ब्रह्म या अर्द्धनारीश्वररूपका प्रतीक है। इसके पूर्व मैथुनी सृष्टिका आविर्भाव नहीं हुआ था। 'तदेव लिङ्गं प्रथमं प्रणवं सर्वकालिकम्' (शिवपुराण, विद्येश्वरखण्ड १६। २८)। यह लिङ्ग सूक्ष्म और निष्कल है। स्थूल (पार्थिव या अन्य वस्तुद्वारा गठित) लिङ्ग जिसकी उपासना की जाती है, वह इस अनादि लिङ्गका प्रतीक है। शिव-लिङ्ग-पूजामें असत्-भावकी कल्पना भी नहीं आ सकती।

विंटरनीजके मतसे शिवलिङ्ग-पूजामें कोई अश्लीलता नहीं है।† प्राचीन सभ्यताके विख्यात आलोचक डॉ० डूरांट कहते हैं कि 'हिंदू-उपासना-पद्धतिमें शिवपूजा सबसे अधिक तपस्या और संयम-साध्य है। लिङ्गायत लोग शिव-लिङ्गके श्रेष्ठ भक्त और पूजक हैं। भारतमें उनका सम्प्रदाय सर्वापेक्षा संयमशील है।‡ फलतः शिवलिङ्ग-पूजामें अश्लीलता-

---

* "Sir John Marshal has identified this figure as the Indian God Śiva in his aspect of Pashupati or Lord of Beasts."
—(The Indus Civilization by Macuar p. 70)

† "Certain large, smooth, cohesive stones unearthed at Mohenjodaro and Harappa were undoubtedly the Lingas of these days. This association (with the worship of Śiva) however seems more probable".
—(Ibid p. 77–8)

‡ "It was in a missionary book that I first learnt that Śiva-Linga had some obscene significance at all."
(Gandhi.)

* "However interesting it could be to find a proof of existence of a Phallic worship among the aboriginal types contemporary with Vedic Ṛṣis, it must be confessed that the word 'Śiśna-Devāḥ' does not supply the evidence." --(Muir, IV, p. 409)

† "The Linga Cult certainly bears no trace of any Phallic cult of an obscene nature."
--(Winternitz: 'Indian Literature', Vol. I, p. 509)

‡ "The worship of Śiva is one of the most austere and ascetic of all the Hindu cults; and the devoutest worshippers of the Linga are the Lingayats, the most puritanic sect in India."
—(Dr. Durant. p. 519).

का आरोप अविवेक, नास्तिकता और असभ्यताके सिवा और कुछ नहीं है। इस विषयमें अधिक आलोचनाके लिये यहाँ स्थान नहीं है।

किसी भी असभ्य, अर्द्धसभ्य, यवन, म्लेच्छ, यहाँतक कि सभ्य जातिसे वैदिक जातिने किसी धर्म, मत, देवता या उपासना-प्रणालीको कभी ग्रहण किया हो—इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। सनातनधर्म और उपासना-पद्धति स्वयं पूर्ण है। इसमें देनेकी शक्ति है, दूसरोंसे कुछ लेनेकी आवश्यकता नहीं हैं। देशकी परम दुर्गति और पराधीनताके दिनोंमें भी विजेता जातिसे धर्मके विषयमें इसने कुछ नहीं सीखा। फिर भला स्वाधीन विजयी 'आर्य' जातिके लिये किसी पराजित असभ्य 'दस्यु' जातिके अश्लीलभावकी उपासना ग्रहण करनेका क्यों कोई प्रयोजन हो सकता है? शिवपूजामें लिङ्गोपासना की जाती है। पर इसमें संदेह नहीं कि यह शिवलिङ्गकी पूजा परब्रह्मकी आदिमूर्तिके प्रतीककी पूजा है और इसको सभी नीची जातियोंके सब लोग कर सकते हैं। किसी भी पुरोहित, दक्षिणा, भोग-राग, मन्त्रादिका इसमें आडम्बर नहीं होता; साधारण जल और बिल्वपत्र तथा पञ्चाक्षर मन्त्रसे ही देवाधिदेव संतुष्ट हो जाते हैं। भारतमें जितने शिवलिङ्ग और शिवमन्दिर हैं, उतने और किसी देवताके मन्दिर और मूर्त्तियाँ नहीं हैं। शिवलिङ्गकी जितनी पूजा होती है, उतनी और किसी देवताकी नहीं होती। आर्योंके लिये असभ्य जातिकी पूजा-पद्धतिको इस प्रकार श्रेष्ठ आसन प्रदान करनेका कोई कारण नहीं दीखता।

वर्तमानकालमें भारतकी किसी तथाकथित आदिवासी जातिमें शिवलिङ्ग या शिवपूजाका अस्तित्व भी नहीं देखा जाता। शिवलिङ्ग-पूजा वैदिक है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। अतएव मोहेनजोदड़ो और हड़प्पाके प्राचीन अधिवासी वैदिक पद्धतिसे उपासना करते थे, यही सिद्ध होता है।

(४) चतुर्थतः खण्डहरोंमें एक चित्रमें देखा जाता है कि एक वृक्षकी शाखापर दो पक्षी बैठे हुए हैं। एकके मुँहके पास फल है, दूसरेके पास कोई फल नहीं है। मोहेनजोदड़ोका यह चित्र सम्भवतः एक प्रसिद्ध ऋग्-मन्त्रके भावका द्योतक है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

—ऋ० म० १ सू० १६४

इस मन्त्रमें जीव और ईश्वर दो पक्षियोंका स्वरूप वर्णित है। जान पड़ता है कि यही रूपक उपर्युक्त चित्रमें परिव्यक्त किया गया है। यदि सचमुच यही बात है तो मोहेनजोदड़ोकी सभ्यता वैदिक है, इसमें कहीं संदेहको स्थान ही नहीं रह जाता।

(५) मोहेनजोदड़ोके एक दूसरे चित्रमें श्मशानका दृश्य है। उसमें एक कलसी, अर्द्धदग्ध काष्ठ और चिताभस्म आदि पाये गये हैं। शवका अग्निसंस्कार प्राचीन कालसे आजतक वैदिक भारतमें प्रचलित है।

इन दोनों चित्रोंसे प्रमाणित होता है कि 'सिन्धु-उपत्यका-की सभ्यता' सम्भवतः प्राक्-वैदिक नहीं है। बल्कि वैदिक ही है। कलकत्ता विश्वविद्यालयके अध्यापक स्व० वेनीमाधव बरुआने इस विषयमें अनुसंधान किया था। दुःखका विषय यह है कि कार्य समाप्त होनेके पूर्व ही उनका परलोकवास हो गया।*

(शेष अगले अंकमें)

प्रभुकी कृपासे मैं सर्वत्र सबमें केवल प्रभुको ही देख रहा हूँ

प्रभुकी परम कृपासे मैं अब देख पा रहा हूँ सर्वत्र।
प्राणि-पदार्थ-परिस्थिति सब हैं रूप उन्हींके अत्र-परत्र॥
सृष्टि-प्रलय, अव्यक्त-व्यक्त सब देश-काल उनके ही रूप।
खेल रहे अपनेमें अपने अपनेसे ही खेल अनूप॥
प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, शुभाशुभ, जीवन-मरण, मान-अपमान।
छिपे सभीमें सदा, बने वे ही अणु, विभु, अति क्षुद्र, महान॥
मन-प्राण-मति-इन्द्रिय सब वे, वही भोग्य भोक्ता भगवान।
विविध विचित्र अनन्त वस्तु चिज्जडमें छाये एक समान॥
प्रभुकी सर्वरूपताने कर लिया मुझे भी अङ्गीकार।
फटा मोह-ममताका पर्दा, मिटा सभी मिथ्याऽहंकार॥

* हिंदू-संस्कृति और स्वाधीनता—श्रीयुक्त श्रीजीव न्यायतीर्थ, 'कल्याण' हिंदू-संस्कृति-अङ्क पृ. १३७-३८।

कर्मठता

(मूल लेखक—प्रा० श्रीसावलापुरकर महोदय)

(भावानुवादक—प्रा० श्रीगोपालजी गुप्त एम्० ए०, काव्यतीर्थ)

मानव-समाजमें कर्मठताको एक दोष समझनेकी प्रवृत्ति पायी जाती है। उसे एक ढोंगीपनका प्रकार समझा जाता है और भोली जनताको लूटनेका एक साधन। संत तुकारामने भी कर्मठताका यह स्वरूप बतलाया है—'स्नान-संध्या-तिलक-माला। चित्तमें द्वेषादिकी ज्वाला।' कर्मठ मनुष्यके विषयमें प्रायः यह लिखा जाता है कि वह व्रताचरणके बाह्य व्यापारोंमें उलझा रहता है, कभी-कभी मूलतत्त्वकी भी अवहेलना कर बैठता है और किसी भी परिवर्तनका कट्टरतासे विरोध करता है। लोग उसे अक्सर 'लकीरका फकीर' या 'लकीर पीटनेवाला' कहते हैं। वह किसी भी परिवर्तनके लिये तैयार नहीं रहता। आजतक जितने भी सुधार हुए हैं, उन सबका विरोध ऐसे ही कर्मठोंद्वारा हुआ है। नयी परिस्थितिमें लचीलापन स्वीकार करके सुलह कर लेना उसके स्वभावमें ही नहीं होता। इस प्रकार बहुत-से आरोप इन कर्मठोंपर खुलेआम लगाये गये हैं। आज तो इसका अत्यधिक विस्तार है।

उपर्युक्त आरोपोंका परीक्षण करके हमें यह देखना है कि उनमें कहाँतक सचाई है और कर्मठताका वास्तविक स्वरूप क्या है एवं उसकी व्याप्ति कहाँतक है? कोई भी बाह्याचरण किसी एक अमूर्त उद्देश्यसे किया जाता है, अतः उद्देश्य महत्त्वका है और आचरण गौण। प्रायः बाह्याचरणके आधारपर उसका औचित्यानौचित्य नहीं बताया जा सकता।

'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।'

—सर्वथा सत्य कथन है। एक ही प्रकारका आचरण एक परिस्थितिमें धर्म्य होता है और दूसरीमें अधर्म्य। पर इस कारण बाह्याचरणकी व्यर्थता सिद्ध नहीं होती। तत्त्व भले ही महत्त्वपूर्ण हो, परंतु उसके आचरणके अभावमें वह अस्तित्वहीन ही माना जायगा। इसीलिये आचरणका भी उतना ही महत्त्व है जितना कि तत्त्वका। यह सत्य है कि तत्त्वको समझ-बूझकर आचरणमें लाना चाहिये। जड और चेतनमें आत्मतत्त्व ही महत्त्वका है। चेतनाहीन शरीर तो अग्निदेवताको ही अर्पण करने योग्य होता है। परंतु शरीरके अभावमें आत्मतत्त्व भी कहाँ व्यक्त होता है? इसीलिये **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** कहा गया है अर्थात् आत्म-कल्याणके लिये शरीरसंवर्धन नितान्त आवश्यक है।

इसी कारण जीवनके अन्यान्य सभी क्षेत्रोंमें तदनुकूल आचरण-तन्त्र निर्मित किये गये हैं और उनके यथावत् पालनपर विशेष बल दिया गया है। धार्मिक क्षेत्रको छोड़कर अन्य सभी क्षेत्रोंमें यही तन्त्र आधुनिक शब्दावलीमें 'अनुशासन' कहलाता है। सिपाहियों, सैनिकों तथा एन. सी. सी. एवं स्कूलके लड़कोंके विशिष्ट प्रकारके गणवेशों एवं उनके धारणकी विशिष्ट पद्धतिपर, उनकी विशिष्ट प्रकारकी हलचलों एवं अपने-अपने ढंगकी स्वच्छता आदि कई बातोंपर कितना ध्यान दिया जाता है! ये सब बातें अनुशासनके अन्तर्गत मानी जाती हैं। इसीलिये सभी लोग अपने-अपने क्षेत्रके आचरण-तन्त्रके अनुकूल अपना-अपना आचरण रखते हैं। सेनाका सिपाही या अधिकारी कड़ी अस्तरीके कपड़े पहिनता है, बड़ी शानसे रहता है और सुव्यवस्थित भी दीख पड़ता है, परंतु वह इन सब आचरणोंके फलस्वरूप रणशूर या निर्भीक होता ही है, यह समझना बहुत बड़ी भूल है। लोकाधिकारियों, दरबारियों आदिके भी पोशाक और आचरणकी अपनी-अपनी विशेषता होती है। सलाम या मुजरा करनेका ढंग, नज़राना-पद्धति, शिष्टाचार आदि सब बाह्य तन्त्रके अङ्ग हैं। इनका यदि पालन यथोचित पद्धतिसे किसीमें नहीं किया जाय तो ये ही कर्मठता-विरोधी सभ्य लोग उसे 'असभ्य-अशिष्ट' कहकर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करते हैं। सेनाके निर्बन्धोंका पालन न करनेवाला तन्त्र-स्वतन्त्र सैनिक तो सभीकी दृष्टियोंमें दण्डनीय होता ही है और अन्य क्षेत्रोंमें भी यदि दण्डनीय नहीं, तो कम-से-कम धिक्कारका पात्र तो अवश्य ही होता है। कोई भी सभा-सोसाइटी लीजिये। उसकी भी अपनी नियमावली होती है। उन नियमोंके अनुकूल आचरण करना उस-उस सोसाइटीके सदस्योंके लिये अनिवार्य होता है, अन्यथा उनपर अनुशासन-भंगकी कार्रवाई की जाती है। विधान-सभाओंके सदस्योंकी शपथ-ग्रहण-विधि भी एक आचरण-तन्त्र ही है। न्यायालयमें तो हर एक बयान देनेवालेको सच बोलनेकी शपथ खानी पड़ती है। तथापि अधिकांश लोग

प्रतिज्ञापूर्वक झूठ ही बोलते हैं। सारांश यह कि ऐसा एक भी क्षेत्र नहीं दिखायी देगा, जहाँ आचरणका कोई तन्त्र न हो। कृतिको कर्म कहा कि उसके आचरणके तन्त्रके आग्रहको कर्मठता नाम देना ही पड़ता है। इतनेपर भी यह कैसे आश्चर्यकी बात है कि धर्मक्षेत्रकी कर्मठताको जो लोग अनावश्यक बतलाते और बुरी निगाहसे देखते हैं, वे ही अन्यान्य क्षेत्रोंकी कर्मठताको आवश्यक मानते और अच्छी निगाहसे देखते हैं। यह पक्षपात क्यों ?

देशभक्तिके क्षेत्रमें आइये। वहाँपर भी कर्मठताके दर्शन आपको होंगे। खादीके खास ढंगके ही कपड़े पहिनना, सर्वोदयवादियोंका विशिष्ट दिनको शुभ मानकर कोई एक ग्रामोद्योग करना, विधान-सभाओंमें चुनकर आनेके लिये बैल-जोड़ी-जैसे विशिष्ट चिह्नका ही उपयोग करना, उसके अपनानेपर अत्याग्रह प्रकट करना, राष्ट्रीय गानके समय खड़े होना आदि सब कर्मठताकी ही लीला है और है भी वह अपरिहार्य।

सामाजिक क्षेत्रमें भी कर्मठता पायी जाती है। अंग्रेजी डिनर-पार्टियाँ विशिष्ट ढंगसे ही सम्पन्न होती हैं। उसके लिये अमुक रंगकी ही पोशाक धारण करनी पड़ती है, काँटे-चम्मच विशिष्ट स्थानपर विशिष्ट ढंगसे ही रखने पड़ते हैं, मद्यपात्र विशिष्ट मन्त्रोच्चारणके साथ ही ओठोंसे लगाना पड़ता है। भारतीयोंके भी पंक्ति-भोजके अपने नियम हैं। परंतु आश्चर्य यह है कि जिन्हें अंग्रेजी-पार्टीके नियम भाते हैं, उन्हीं भारतीयोंको पंक्ति-भोजके नियम भद्दे लगते हैं। पार्टीके सूट-बूट अच्छे ! और हमारे 'सदा शुचि' रेशमी वस्त्र भद्दे !! इसकी कैसी क्या तात्त्विक मीमांसा करेंगे ? स्कूल-कॉलेजोंके सम्मेलन, साहित्य-सम्मेलन, कॉंग्रेस आदि राजनीतिक संस्थाओंके वार्षिक अधिवेशन या गिरजाघरोंमें प्रति रविवारको दिये जानेवाले धार्मिक प्रवचन आदि सभामें कर्मठता किसी-न-किसी रूपमें पायी जाती ही है। अधिक क्या कहें ? बाजारकी दूकानोंकी सजावटमें और विधि-प्रदर्शनोंमें भी एक प्रकारकी कर्मठताको अपनाये बिना काम नहीं चलता।

वैयक्तिक आचरणोंके तथा रहन-सहन एवं पोशाकके भी नियम उस-उस समाजमें पाये जाते हैं। समय-समयपर उनमें अलक्षितरूपसे परिवर्तन होता रहता है तथापि उनके संकेत प्रायः उस-उस समयके लिये एक-से ही होते हैं। रंगकी संगति, सौन्दर्यकी कल्पना, कलात्मकता, शरीर-स्वच्छतासम्बन्धी धारणा आदिको लेकर फैशन चल पड़ता है और उस-उस कालमें उसका सर्वत्र अनुकरण होता रहता है। इस 'फैशन' को भी आधुनिक कर्मठताका एक प्रकार ही समझिये। परंतु यह कैसे आश्चर्यकी बात है कि हम नियमपूर्वक किये जानेवाले भजन-पूजनको तुच्छतासे कर्मठता कहते हैं, परंतु प्रतिदिन सुबह उठते ही दाढ़ी घोंटने बैठनेको कर्मठता समझकर निन्दय नहीं कहते !! इस तरह एकको निन्द्य और दूसरेको अनिन्द्य कहना हमारी बुद्धि-भ्रष्टताका ही परिचय देना है। इसे सिवा बुद्धि-भ्रष्टताके कार्यके अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं ?

देव-दर्शनको जानेवाली प्राचीन पुरन्ध्रीके हाथका रजत-पात्र और चहल-कदमीके लिये निकली हुई 'आधुनिका' के कर-कमलका शोभावर्धक 'पर्स' दोनों कर्मठताके ही नमूने हैं। तारतम्य ही देखा जाय तो मानना पड़ेगा कि उस रजत-पात्रकी उस विशिष्ट कार्यमें आवश्यकता 'पर्स' की अपेक्षा अधिक है। पुराने समयका वेणीदान और आजका 'बॉबकट' इन दोनोंमें विद्यमान आग्रह कर्मठताका ही प्रकार है। संध्या-पूजनके लिये प्रयुक्त पञ्चपात्रादि सामग्री और चाय-पानके लिये काम आनेवाली 'चम्मच-कप-तश्तरी' दोनोंमें किसकी अधिक उपादेयता है, कहना कठिन है। 'श्रीगणेशाय नमः' लिखकर प्राचीनकालमें ग्रन्थारम्भ करनेकी पद्धतिकी तरह आधुनिक ग्रन्थोंके उपोद्घात, अर्पणपत्रिका, सर्वाधिकार, सौभाग्यवती·······के समर्पण करनेकी घोषणा आदि कर्मठताके ही काल-परिवर्तित उदाहरण हैं। प्राचीन संस्कृत पण्डितोंका शाल और आजके अंग्रेजी विद्वानोंका पदवी-दान-समारोहके समयका काला गाउन दोनोंको एक-सा ही शोभास्पद या दोषास्पद मानना चाहिये। एकका भस्म-धारण और दूसरेका मुँहपर लगा सुगंधितचूर्ण (फेस पाउडर) दोनोंकी सरसता-नीरसता किस आधारपर निश्चित करेंगे ? आजका हाफपेंट पुराना पंचिया ही नहीं है क्या ? विदेशसे दिल्ली आये हुए किसी भी अतिथिका सदलबल राजघाट पहुँचकर बापूकी समाधिपर एक खास ढंगसे समारोहपूर्वक पुष्प-वलय अर्पण करना क्या कर्मठता नहीं है ? परम्परागत रूढ़ियोंका, और परकीय प्रथाओंका अंधानुकरण दोनों ही भयावह एवं त्याज्य हैं। तथापि इन दोनोंमें सर्वप्रथम परकीय प्रथाओंके अन्धानुकरणका त्याग करनेकी आवश्यकता है; क्योंकि इस अन्धानुकरणमें भयानक हानिके अतिरिक्त स्वाभिमान-शून्यता, हीनताकी कल्पना एवं स्वात्मघातकता आदि अनेक दोष भरे पड़े हैं। आजकी हमारी 'फैशन' मूलक कर्मठता विदेशियोंके अन्धानु-

करणसे ही उत्पन्न हुई है। तथापि हम उसे 'सुधार' के नामपर सानन्द स्वीकार कर रहे हैं और प्राचीन कर्मठताको अन्धश्रद्धा-के नामपर त्याग रहे हैं !!

सारांश यह है कि कर्मठता सभी कालोंमें, सभी देशोंमें जीवनव्यापिनी होते हुए भी एकमात्र धार्मिक कर्मठतापर दूषित दृष्टिपात करना और उसे ढोंग कहकर उसका अधिक्षेप करना कदापि न्यायसंगत नहीं है। ढोंग कहीं भी हो, गर्हणीय ही है; फिर वह चाहे धर्मके, साहित्यके या शरीरप्रसाधनके क्षेत्रमें हो। परंतु केवल धर्मक्षेत्रके ढोंगको एकमात्र दोष-दृष्टिसे चुनकर निकालना किं बहुना जहाँ-जहाँ बाह्य धर्माचार पाये जाते हैं वहाँ वहाँ यह खास ढोंग ही है, ऐसा आनुमानिक सिद्धान्त प्रस्थापित करना—आत्मप्रवञ्चनाका ही बहुत भयानक रोग है।

कर्म और कर्मठताकी सीमारेखा बहुत सूक्ष्म है। कर्मठता गले आ पड़ती है, अतः कर्मसे ही पिण्ड छुड़ा लेनेमें एक तरहसे अराजकता उत्पन्न हो जायगी। इससे तो कर्मठताका अंगीकार अच्छा है, जो समाजको विघटनसे बचाता है; क्योंकि कर्मठताके अपनानेसे थोड़े बहुत कर्म तो नियमित होते रहेंगे। अतः कर्मठता कर्महीनता एवं उच्छृङ्खलताकी अपेक्षा सर्वतोपरि स्वीकार्य है। कम-से-कम जिस कर्ममें शारीरिक एवं मानसिक शुद्धताका अनुभव होता है, जिसमें सात्त्विकताके संस्कारकी सम्भावना रहती है, उसके सम्बन्धकी कर्मठताका कलङ्क स्वीकार करके भी उसका आचरण करना पूर्णतः हितावह है। सौन्दर्य-प्रसाधनके बाद दर्पणमें रूप-दर्शन करनेकी अपेक्षा वास्तविक स्वरूप-दर्शनके मार्गपर—स्वल्पमात्र क्यों न सही, ले चलनेवाली यह 'अघमर्षण'-विधिवाली कर्मठता क्या श्रेयस्कर नहीं है ? कर्मकी महत्ताकी अनुभूतिके लिये पहिले कर्मठताको ही स्वीकार करना पड़ता है। तभी गंदी आदतोंके रहते हुए भी पवित्र स्थानोंपर गंदगी करने या फैलानेमें किसीको भी संकोच मालूम पड़ता है। यदि कोई धर्मका बाह्य चिह्न शरीरपर धारण करता है और 'स्नान-संध्या-तिलक-माला' से शुचिर्भूत होनेका ढोंग ही करता है तो भी उससे धर्मभावके संचरणकी न्यूनाधिक सम्भावना अवश्य रहती है। बाह्यपरिस्थितिका आचरणपर प्रभाव पड़ता ही है। कम-से-कम चार आदमियोंके सामने असदाचरण करनेमें लज्जा प्रतीत होती ही है; क्योंकि स्वाँगके अनुरूप आचरण करना पड़ता है न। सारांश यह कि अन्य किसी भी क्षेत्रकी कर्मठताकी चार आदमियोंकी अपेक्षा धर्म-क्षेत्रकी कर्मठता निरापद ही नहीं, लाभदायक भी है।

धर्मके आग्रहपूर्ण आचरणको कर्मठता कहकर उसके प्रति जो एक तिरस्कार-भाव व्यक्त किया जाता है, उसका एक कारण यह है कि मानव-समाज धार्मिक मनुष्यसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रहादिकी जैसी अपेक्षा रखता है वैसी अन्यान्य क्षेत्रोंके लोगोंसे नहीं। अतः अपेक्षित मनुष्य यदि हमारी आशाके विपरीत आचरण दिखाता है तो उससे मनको एक जबरदस्त धक्का लगता है और हम उसकी कर्तव्य-भ्रष्टता-पर उसे बुरी तरह फटकारते हैं। यदि कोई भाषाध्यापक लिखने-में ह्रस्व-दीर्घ-अनुस्वारकी कोई गलती करता है; पतिव्रता समझी जानेवाली कोई स्त्री यदि स्वैराचरणका सबूत देने लगती है या एन्टी-करप्शन विभागके अधिकारी ही यदि रिश्वत लेने लगते हैं तो (ऐसे उदाहरणोंकी बहुलताके कारण अब लोगोंको ऐसी बातोंपर भी आश्चर्य नहीं मालूम पड़ता। यह अधोगति है या उन्नति, समझनेकी बात है) जनता कितने आश्चर्यमें पड़ जाती है। स्वच्छ-श्वेत वस्त्रपर स्वल्प-सा काला धब्बा दर्शकके मनको स्वभावतः एकदम आकृष्ट कर लेता है। इसी तरह जिनसे जिस कर्तव्यकी आशा की जाती है वे यदि उस कर्तव्यमें चूकते हैं तो जनताका ध्यान तुरंत उनपर जाता है और जनताकी आँखोंमें वे खटकने लगते हैं। धर्मक्षेत्रकी कर्मठताके प्रति निन्दय भावके प्रचारका यह रहस्य है, इसी कारण इस धर्मक्षेत्रकी कर्मठताको अधिक ख्याति प्राप्त हुई है। यहाँतक कि कर्मठता अन्य क्षेत्रोंमें भी हो सकती है, इस बातको ही लोग भूल गये। पर्यायसे यह धार्मिकताकी प्रशस्ति ही है। परंतु धार्मिक मनुष्य कर्मठताके कारण ढोंगी होता है, यह कहना सर्वथा असत्य है। वास्तविक सत्य तो यह है कि स्वभावके पाखण्डी मनुष्य ही जिस तरह अन्यत्र ढोंगसे काम लेते हैं, उसी तरह धर्माचरणमें भी ढोंगी जीवन बिताते हैं।

समाजको स्वच्छन्दजीवी बननेसे रोकनेके लिये कर्मठता-का आग्रह अनेक बार अत्यावश्यक सिद्ध हुआ है। मनके न चाहनेपर भी बलप्रयोगपूर्वक शरीरसे काम करवा लेना अच्छे कामोंमें असंदिग्धरूपसे लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इस सम्बन्धमें 'ताडने बहवो गुणाः' को चिरंतन सत्य कह सकते हैं। अच्छे कामोंमें बल-प्रयोग प्रायः घातक सिद्ध नहीं होता। यम-नियमोंमेंसे यमकी साधना जब भी कोई कर सकता है, उत्तम है, परंतु तत्पूर्व साधकको नियमकी ही साधना करनेका उपदेश देनेकी प्रथा पायी जाती है; क्योंकि नियम-पालनसे ही साधकमें यमाचरणकी क्षमता उत्पन्न हो सकती है और यदि उत्पन्न नहीं होती तो भी नियमाचरणजन्य जो लाभ पल्ले पड़ता

है, वह किसी भी प्रकार नगण्य नहीं है। यह सत्य है कि धार्मिक कट्टरता कर्मठताका ही एक प्रकार है और यह भी सत्य है कि ऐसे ही कट्टर धार्मिकोंकी ओरसे किसी भी सुधारके लिये सदैव घोर विरोध भी होता रहा है तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सुधारकोंकी स्वच्छन्दता या उच्छृङ्खलतापर अङ्कुश लगाकर सामाजिक संतुलन बनाये रखनेका कार्य इन कट्टर कर्मठोंने जितना अधिक किया है, उतना क्वचित् ही किसीने किया होगा । सुधारका अर्थ है—दुःखदायी बन्धनोंसे छुट्टी पाकर सुखदायी बन्धनोंको गले लगाना । पूर्णतः बन्धनमुक्तिको तो कोई भी विद्वान् न सुधार कहता है और न समझता ही है। अतः नये बन्धनोंसे अच्छी तरह अभ्यस्त होनेतक पुराने बन्धनोंको धीरे-धीरे छोड़ते चलना ही सामाजिक दृष्टिसे हित-कारक है। सामान्य जनताके लिये तो यह बन्धनान्तर अलक्षित ही रहना चाहिये, अन्यथा वह ऐसे अवसरपर अच्छे-अच्छे बन्धनोंको भी तोड़कर ऐसी प्रवाह-पतित हो जाती है कि फिर उसे आगे ढकेलनेवालेकी अपेक्षा खींचकर पकड़ रखनेवाले-की ही अधिक आवश्यकता अनुभव होती है। सभी सामाजिक और धार्मिक सुधारोंका इतिहास इसका साक्षी है।

तथापि ऐसी भी विचारधाराके लोग समाजमें पाये जाते हैं जो कर्मठताके दोषसे बचनेके लिये किसी भी नियमको नहीं चाहते और मनको स्वच्छ रखकर अवसरोचित काम करते हुए जीवन बिताना चाहते हैं। परंतु ऐसे लोग सामान्य कोटिके नहीं होते। अतः सबके लिये यदि कर्म-बन्धन अनावश्यक कर दिया जाता है तो आत्मप्रवञ्चनाको ही पनपने-का सुअवसर प्राप्त होगा। तुकाराम-जैसे संतने भी निर्मल हृदय एवं मधुर वाणीके प्राणीके लिये माला धारण न करनेके प्रति आग्रह नहीं दिखलाया अर्थात् माला धारण करनेका विरोध नहीं किया। परंतु माला धारण न करनेका अधिकारी कौन, इसका निर्णय करना कठिन है।

अपने समस्त आचरणको ही ईश्वराराधन समझनेवाले अधिकारी पुरुष दुनियामें लगभग नहींके बराबर होते हैं। भगवत्-पूज्यपाद श्रीमत्शंकराचार्यजीने अपने 'परा-पूजा-स्तोत्र' में कहा है—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः
प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विविधोपभोगरचना
निद्रा समाधिस्थितिः।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः
स्तोत्राणि सर्वा गिरः
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं
शम्भो ! तवाराधनम् ॥

इस अवस्थामें देहासक्ति भी नहीं रहती। परंतु यह अधिकार यदि कोई अनधिकारी अपने हाथमें ले लेता है और संध्या-वन्दनादिसे छुट्टी पा लेता है तो उससे लाभकी अपेक्षा हानि ही होगी।

जिनका ज्ञान परिपक्व दशाको प्राप्त हो चुका है और जो कार्याकार्य-विवेकमें समर्थ हैं, उनके लिये विशिष्ट कर्मोंसे ज्ञान-पूर्वक मुक्ति पाना क्षम्य हो सकता है। पर वह भी आदर्श तो नहीं है; क्योंकि बड़ोंका अनुकरण छोटे आदमी जो करते हैं वे कर्म एवं तज्जनित कर्मठतासे अपना पिंड छुड़ानेके लिये ! अतः उनके लिये अपने स्वैराचरणका समर्थन करनेके लिये बड़ोंका अनुकरण करना बहुत आसान है। इसी कारण अनधिकारी लोगोंपर कर्मका और तज्जन्य कर्मठताका भी बन्धन लागू करना नितान्त आवश्यक समझना चाहिये। रज-तमात्मक प्रवृत्तियाँ विनष्ट होकर जब केवल सत्त्वमात्र इस संसारमें शेष रहेगा, तबकी बात हम यहाँ नहीं कहना चाहते। हमारा यहाँ इतना ही निवेदन है कि जबतक रज-तम विद्यमान हैं, तबतक उनके नियन्त्रणके लिये कुछ शरीराचरणकी असंदिग्धरूपसे आवश्यकता रहेगी। आन्तरिक वृत्तियाँ बाह्याचरणके अनुकूल 'जैसी मुख तै नीकसै तैसी चालै चाल' अवश्य होनी चाहिये। परंतु यदि वैसी भीतर-बाहरकी एकता नहीं रह पाती, इसलिये बाह्याचरणको ढोंग कहकर उसकी उपेक्षा करना कदापि संगत नहीं * ? यदि हम नियमोंके बन्धनको जीवनसे हटा

* भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने लिये कर्मठताकी आव-श्यकता बतलाते हुए कहा है—"बड़े लोग जिस प्रकारका आचरण करते हैं, दूसरे लोग उसीको प्रमाणरूप मानकर उसीका अनुकरण करते हैं। अर्जुन ! तीनों लोकोंमें ऐसा कोई भी फल मुझे अप्राप्त नहीं है, जिसकी प्राप्तिके लिये कर्म करना पड़े, तो भी मैं कर्म करता ही हूँ। पार्थ! यदि मैं सावधान होकर कर्म न करूँ तो सभी मनुष्य मेरा ही अनुसरण करने लगेंगे। मेरे लिये आवश्यक न होनेपर भी यदि मैं कर्म छोड़ दूँ तो सब लोग कर्महीन होकर नष्ट हो जायँगे और मैं वर्णोंमें संकरता उत्पन्न करनेका तथा प्रजाके विनाशका कारण बनूँगा। इसलिये संसारी लोग जिस प्रकार आसक्त होकर कर्ममें प्रवृत्त होते हैं, वैसे ही लोकसंग्रहकी इच्छा करनेवाला विद्वान् अनासक्त होकर कर्म करे। (गीता अध्याय ३ श्लोक २१ से २५)

देते हैं और प्रगतिके नामपर मनमाने उच्छृङ्खल नारे लगाते हैं तो हमारे लिये अधोगतिकी सीमा निश्चित करना असम्भव हो जायगा। आजके इस विवेकभ्रष्ट नेतृत्वके युगमें पतनकी सीमा-रेखा ही मिट गयी है। सब पाप पुण्य हो गये हैं। बड़े-बड़े कवियोंने भी कामना की है—'सब पाप पुण्य हो जाय।'

कूपमण्डूकता, कट्टरता, दुराग्रह, हठीलापन आदि अनेक दुर्गुण कर्मठतासे जन्म पाते हैं, परंतु अच्छी बातोंमें ये दुर्गुण ही सद्गुण भी बन जाते हैं। मनुष्य कट्टर स्वैराचरणी रहनेकी अपेक्षा यदि धार्मिकतामें कट्टर रहता है तो समाजके लिये निस्संशय वह कम उपद्रवकारी रहेगा। एक बात ध्यानमें रक्खें—कर्मठताका अर्थ धर्मान्धता नहीं है। ईसाइयोंद्वारा परस्पर जीवित जलानेके रूपमें किये गये अत्याचार और मूर्तिभञ्जन तथा धर्मान्तरके लिये किये गये मुसलमानोंके अत्याचार कर्मठता नहीं, धर्मान्धता हैं। भारतवर्षमें कभी ऐसी धर्मान्धता नहीं पायी गयी। कर्मठता अवश्य दृष्टिगोचर होती रही और इसी कारण भारत अपना स्वत्व भी कायम रख सका था। आज उसीपर स्वतन्त्र होकर भी घातक आक्रमण हो रहा है। कर्मठताका लक्षण है 'स्वशरीर-निग्रह' और धर्मान्धताका 'परपीड़न।' (कर्मठता तप है, धर्मान्धता अनर्गल हिंसा) एक आत्मान्वेषी, तो दूसरा पर-मर्मान्वेषी होता है। कर्मठतामें सहिष्णुता है तो धर्मान्धतामें असहिष्णुता। अन्धता-पदसे ही तद्गत भाव व्यञ्जित हो जाता है। इसी प्रकार कर्मठता और भोलापन भी एक नहीं है, कर्मठ मनुष्य व्यवहार-चतुर हो सकता है, पर भोला आदमी सभी क्षेत्रोंमें भोला ही रहता है।

विशिष्ट प्रकारकी कर्मठताका मण्डन करना इस लेखकका उद्देश्य नहीं है। पुरानी कर्मठता जिन्हें पसंद नहीं है उनका यह कर्तव्य है कि वे धार्मिक एवं नैतिक क्षेत्रमें चित्तशुद्धिके लिये एवं शरीर-निग्रहके लिये कोई नयी प्रकारकी उपकारक कर्मठताका आविष्कार करें। उस नूतनाविष्कृत कर्मठताका हम अवश्य सानन्द स्वागत करेंगे, परंतु बन्धनरहित उच्छृङ्खलता, आचार-शून्य, अधार्मिक अवस्था कदापि नहीं। हमारा अटूट विश्वास है—

बन्धनमें खिलती कली करते अलि रस पान।
बन्धच्युत देगी न सुख खो देगी निज प्राण॥ १॥
चूल्हेमें नित सोहती अन्न पकाती आग।
रचती चित्र विनाशका कर सीमाका त्याग॥ २॥
बंध-बद्ध सत्ता-सरित करे जगत् कल्याण।
वही तटाङ्कुश-हीन हो ले कितनों के प्राण॥ ३॥

सारांश यह है कि कर्मठताका क्षेत्र और व्याप्ति बहुत अधिक है। उसे न चाहनेपर भी उससे हम निर्मुक्त नहीं हो सकते। अतः कालोचित कर्मठताकी प्रस्थापना करना हमारा आद्य कर्तव्य है। *

---

* जबतक स्नान-संध्यादिके पश्चात् शुद्ध वस्त्र पहनकर आसनपर बैठकर भोजन करनेकी पद्धति थी, तबतक अपवित्र, रोगदूषित अन्न तथा उच्छिष्ट भोजनसे अपने-आप रक्षा होती थी। अब उसको ढोंग कहकर छोड़ दिया तो सब प्रकारका अपवित्र, स्वास्थ्यनाशक, रोगवर्धक, उच्छिष्ट भोजन चलने लगा। निरामिषभोजी भी मांसाहारियोंके साथ मांसपके बर्तनोंमें बना भोजन खाने लगे। यों भोजनमें अशुद्धि आनेसे मन अशुद्ध हो गये!

वर्णाश्रमके नियम शिथिल होनेसे धर्मानुमोदित संयम-नियमपूर्ण आचार-विचारमें कमी हो गयी——फलतः समाजके स्वास्थ्यमें सर्वत्र सभी क्षेत्रोंमें भयानक शिथिलता आ गयी। वर्णाश्रमके कड़े नियमोंने जिस जातिको अबतक बचा रक्खा था, मुसल्मानी अत्याचार-युगमें जो अपने स्वरूपको अक्षुण्ण रख सकी थी, वही आज प्रगतिके नामपर अपने आचारको ढोंग बताकर तथा अंधाधुंध परानुकरण करके अपने ही हाथों अपना विनाश करनेपर तुल गयी है। यह कितने बड़े दुःखकी बात है!

अन्ध परानुकरणपरायणताका परिणाम यह हुआ कि आज हम भारतीय कहलाते हुए ही विदेशी हो गये। हमारे भोजन, वस्त्र, रहन-सहन, आचार-विचार सभीमें उच्छृङ्खलता आ गयी। अच्छी बातोंका अनुकरण तो कठिन होनेसे नहीं हो सका, परंतु बुरा अनुकरण 'ढोंग-त्याग' तथा 'उच्चस्तरके जीवन-निर्माण'के नामपर सर्वत्र होने लगा। परिणाम सामने है——सदाचार, सत्य, ईमानदारी, अहिंसा, त्याग, प्रेम आदि केवल नामके लिये ही रह गये। एक ही धर्मके लोग भाषा, प्रान्त, मत और पार्टीके नामपर परस्पर किस प्रकार द्वेष-हिंसामें लगे हैं यह प्रत्यक्ष है। यह सब समाजके धार्मिक नियमोंके परित्यागका ही विषमय परिणाम है।

यह पतनोन्मुखी गति नहीं रुकी तो पता नहीं, हमारे पतनका अन्त कहाँ होगा। ——सम्पादक

अपने-आपके साथ दुर्व्यवहार मत कीजिये

(लेखक—श्रीचूड़ामन मोतीलालजी मुन्शी)

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

(गीता ६ । ५)

अर्थात् तुम स्वयं ही अपने मित्र और स्वयं ही अपने शत्रु हो ।

आधुनिक कालके मनुष्योंके आचार-विचार, व्यवहार-बर्ताव, धंधा-व्यवसाय आदिपर ध्यान देकर देखिये तो आपको अनुभव होगा कि हम स्वयं अपने साथ दुष्टाचार करके अपनेको दुःखमें डाल रहे हैं । इसलिये हम अपने ही साथ आप शत्रुका व्यवहार कर रहे हैं । इसके विपरीत ऐसे भी कुछ लोग हैं, जो अपने-आपके साथ सद्व्यवहार करते हैं और अपने साथ-साथ दूसरोंका भी भला करते हैं । ऐसे व्यक्ति आपको अत्यन्त अल्पमात्रामें मिलेंगे । पर यह सत्य है कि इन दोनोंमें पहले प्रकारके लोग दुःखमय जीवन व्यतीत करते हैं और दूसरे प्रकारके लोग सुखमय जीवनका आनन्द लूटते हैं ।

मनुष्यका मन निरन्तर सुख-शान्तिकी खोज करता रहता है और इसी भावनासे प्रेरित होकर मनुष्य दूसरोंसे सम्पर्क स्थापित करता और व्यवहार करता है । सुख-शान्ति पानेके लिये उसे जो शारीरिक या मानसिक कर्म करने पड़ते हैं, उन्हें ही व्यवहार कहते हैं ।

व्यवहार दो प्रकारका होता है, (१) सद्व्यवहार और (२) दुर्व्यवहार । सद्व्यवहारसे आशय है—सबकी भलाईमें रत रहना, सदाचरण करना, सबको सुख पहुँचाना । तात्पर्य यह कि जिस कार्यका अन्तिम परिणाम सुखके रूपमें प्राप्त हो उस कार्यको सद्व्यवहार कहते हैं । इसके विपरीत दुर्व्यवहार-का तात्पर्य है—बुरा बर्ताव करना, दुष्टाचरण करना, अत्याचार करना, पीड़ा पहुँचाना । दूसरे शब्दोंमें किसीको भी शारीरिक या मानसिक पीड़ा पहुँचानेका नाम दुर्व्यवहार है । और भी स्पष्ट शब्दोंमें कहा जाय तो यह होगा कि जिस कार्यका अन्तिम फल दुःखके रूपमें प्राप्त हो, उस कार्यको दुर्व्यवहार कहते हैं ।

मनुष्य अपने द्वारा होनेवाले प्रत्येक व्यवहारका फल सुख-शान्तिके रूपमें चाहता है, परंतु वह इस बातको भूला हुआ है कि सद्व्यवहारका निश्चित सुफल सुख-शान्ति है और दुर्व्यवहारका निश्चित कुफल दुःख और बेचैनी है । इस भूलका यह तात्पर्य नहीं कि इसके लिये मनुष्य अनुत्तरदायी है । मनुष्यमें इतर प्राणियोंकी अपेक्षा बुद्धि और विचारशक्तिकी विशिष्टता है, वह अपना भला-बुरा अच्छी तरह सोच-समझ सकता है । इसलिये अपनी बुद्धिका सदुपयोग या दुरुपयोग करनेका उत्तरदायित्व मनुष्यपर है । जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपराध करनेके पश्चात् अपनेको यह कहकर नहीं बचा सकता कि उसे कानूनका ज्ञान नहीं था, उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति अपने द्वारा होनेवाले बुरे व्यवहारके दुष्परिणामसे अपनेको यह कहकर नहीं बचा सकता कि उसने बुद्धिका उपयोग करनेमें भूल की है । मनुष्य अपनी बुद्धिका उपयोग करनेके लिये स्वतन्त्र है, इसलिये अपने कर्मोंका उत्तरदाता भी वह स्वयं ही है और अपने कर्मोंका फल पानेसे उसे कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती ।

आजके युगके मनुष्योंके आचार-विचार, व्यवहार बर्ताव धंधा-व्यवसाय आदिपर विचार कीजिये—चाय, पान, तमाखू, बीड़ी, सिगरेट आदि मादक पदार्थोंका अत्यधिक सेवन करना; चटोरापन, अत्यधिक मिठाई, खटाई, चाट आदि उत्तेजित करनेवाले पदार्थ, मनमें विकार पैदा करनेवाले दूषित पदार्थ, जूँठन, अंडे, मांस आदि हिंसामय चीजोंका भोजनमें प्रयोग करके शरीर और मनको कष्ट देना; पशुओंके साथ अत्याचार करना—जैसे उन्हें काटना, उनका मांस बेंचना, खाना आदि और शराब पीना, बनाना, बेंचना; दूध, घी, दवा, चाय तथा अन्यान्य खाने-पीनेकी चीजोंमें मिलावट करना, विक्रय करना; सिनेमाके गंदे फिल्म जिनसे कामोत्तेजनाको प्रोत्साहन मिलता हो, निर्मित करना, देखना; अश्लील गीत बनाना, गाना; मुँहसे अश्लील शब्दोंका उच्चारण करना; अधिक तड़क-भड़क, शान-शौकतसे रहना; बड़ी कीमतके फैशनदार भड़कीले वस्त्रों-का उपयोग करना, निरन्तर भोगविलासमें निमग्न रहना, परस्त्री या परपुरुषको कुदृष्टिसे देखना, व्यभिचार करना; ग्राहकोंसे माल या वस्तुओंके अधिक दाम ऐंठना, दूसरोंका धन मुफ्त पचानेका मनोरथ तथा प्रयत्न करना, चोरी करना; झूठ बोलना, न्यायालय आदिमें मिथ्यावाद आदि प्रस्तुत करना; असत्य वचन देना, धोखा देना, रिश्वत लेना और

भ्रष्टाचार करना आदिका प्रचार और प्रसार दिन-प्रतिदिन बढ़ता चला जा रहा है !

ये सब दुर्व्यवहारके स्वरूप हैं। इन कार्योंमें न केवल दूसरोंको ही हानि उठानी पड़ती है, वरं स्वयं भी हानि उठानी पड़ती और दूसरोंसे अधिक दुःख सहना पड़ता है। इस बातको बहुत कम लोग जानते होंगे कि दूसरोंके प्रति किया गया दुर्व्यवहार भी हमारे ही शरीर और मनको कष्ट पहुँचाता है। हमारे किये हुए किसी कार्यका परिणाम हमारी शारीरिक या मानसिक पीड़ा हो तो यही कहा जा सकेगा कि हमने अपने ही हाथों अपने पाँवोंमें कुल्हाड़ी मारकर अपनेको विपत्तिके गड्ढेमें ढकेला है।

जैसे एक मनुष्य शराब पीता है। उक्त शराबी अच्छी तरह जानता है कि शराब पीनेसे मनुष्यके शरीर और मनपर दूषित प्रभाव पड़ता है, पाचनक्रिया मन्द पड़ जाती है, हृदय और फेफड़े सड़ जाते हैं और मस्तिष्क अपना सन्तुलन खो बैठता है। फलतः अनेकों शारीरिक और मानसिक रोग हो जाते हैं। इतना जानकर भी वह अपने दुर्व्यसनसे बाज नहीं आता। इसलिये यह कहना अनुचित न होगा कि उक्त शराब पीनेवाला जान-बूझकर अपने-आपके साथ दुर्व्यवहार करके अपने शरीर और मनको क्लेश दे रहा है!

जिस प्रकार शराब पीनेसे शारीरिक और मानसिक रोग हो जाते हैं, उसी प्रकार कामोत्तेजना पैदा करनेवाले विभिन्न प्रकारके खानपान, दर्शन, स्पर्श, अध्ययन, मिलन आदिके रूपमें पदार्थोंका सेवन करनेसे एवं प्रत्येक प्रकारके दुर्व्यसनसे विभिन्न प्रकारके शारीरिक और मानसिक रोग होते हैं।

इसके अतिरिक्त जो दूसरोंके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है, वह अपने-आपके साथ किस प्रकार दुर्व्यवहार हो जाता है उसे समझिये—

बाह्य दृष्टिसे देखनेपर दूसरोंके साथ किये गये दुर्व्यवहारका प्रभाव दूसरोंपर पड़ता दिखायी देता है, किंतु आन्तरिक दृष्टिसे देखनेपर हमें पता चलता है कि दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव करनेका विषैला प्रभाव दूसरोंकी अपेक्षा हमपर ही अत्यधिक पड़ता है।

मान लीजिये कि एक व्यक्ति किसीकी वस्तुका अपहरण करनेका विचार रखकर चोरी करता है। चोरी करनेके पूर्व वह जानता है कि मैं कानूनके विरुद्ध करने जा रहा हूँ और मुझे इसका दण्ड भी मिल सकता है, किंतु फिर भी वह अपने इस विचारकी अवहेलना कर, धनकी लालचमें, दुर्व्यवहारसे होनेवाले दुष्परिणामकी ओरसे लापरवाह होकर चोरी करनेमें प्रवृत्त होता है और अपने लक्ष्यको भी प्राप्त कर लेता है। हो सकता है कि वह कानूनकी दृष्टिसे ओझल होकर अपनेको बचा ले, परंतु वह स्वयंके विचारोंसे होनेवाले दुष्परिणामसे अपनेको नहीं बचा सकेगा।

मनोविज्ञानके नियमानुसार प्रत्येक विचारकी प्रतिक्रिया होती है। चोरी करनेके विचार निकृष्ट विचार हैं। निकृष्ट विचारोंकी प्रतिक्रियासे मनुष्यके शरीर और मनपर दूषित प्रभाव पड़ता है—चिन्ता, भय, विषाद, रोग, शोक, निराशा आदि कष्ट पहुँचानेवाले दुर्विचार मनुष्यका पीछा नहीं छोड़ते और इस कारण मनुष्य निरन्तर अस्त-व्यस्त तथा अशान्त रहता है। इन दुर्विचारोंकी क्रिया-प्रतिक्रिया निरन्तर चलती रहनेके कारण मनुष्य दिन-प्रतिदिन चोरी-जैसे दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होता जाता है। फलतः मनुष्यको अनेकों शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ घेरे रहती हैं एवं अन्तमें दूसरोंके विनाशके विचार अपने ही विनाशके विचारोंमें परिणत होकर अकाल ही उसको मृत्युके मुखमें डाल देते हैं।

जिस प्रकार चोरी करनेके विचार निकृष्ट विचार हैं, उसी प्रकार दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव करने, अत्याचार करने या उन्हें किसी भी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक हानि पहुँचानेके विचार भी निकृष्ट विचारोंकी गणनामें आते हैं। इन विचारोंका भी वही परिणाम होता है जैसा कि ऊपर चोरीके विचारोंका बताया गया है।

मनुष्यका मन एक प्रकारका खेत है और उसके विचार बीजरूप हैं। जिस प्रकार खेतमें बीज डालनेसे बीजके अनुसार ही फसल पैदा की जाती है, उसी प्रकार हमारे मानसिक खेतमें भी विचाररूपी बीज बोनेसे उसमें उपज प्राप्त की जाती है। जैसे कृषिक्षेत्रमें गेहूँके बीज बोनेसे गेहूँकी ही फसल प्राप्त होती है, अन्य फसल प्राप्त नहीं हो सकती, उसी प्रकार हमारे मानसिक क्षेत्रमें भी बुरे विचारोंके बीजकी उपज बुरी अर्थात् दुःख, क्लेश, पीड़ा, बेचैनी, रोग-शोक आदिके रूपमें ही प्राप्त की जा सकती है, भली उपज अर्थात् सुख-शान्ति आदि नहीं प्राप्त की जा सकती।

अतः किसीके भी साथ दुर्व्यवहार करनेका विचारमात्र रखना हमारी मनोभूमिमें बुरे बीज बोना है। इसलिये यह निश्चित है कि बुराईके बीजकी बुरी फसल हमें प्राप्त होगी

और उसका कटु फल हमें ही चखना होगा। अतएव दूसरोंकी बुराईके विचार हमारे मनमें आने देना हमारा अपना स्वयंका ही विनाश करना है।

प्रकृतिके न्यायालयमें भी दण्डका विधान है। प्राकृतिक नियमोंको देखकर यह पता चलता है कि प्रकृति सभीको सुखी रखना चाहती है। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि नियमित रूपसे उदयास्त क्यों होते हैं? एक बीजका प्रतिफल अनन्त फलोंके रूपमें क्यों प्राप्त होता है? अनुकूल समयपर फल-फूल, वनस्पतियाँ, ओषधियाँ आदि क्यों उत्पन्न होती हैं? ऋतुएँ भी अनुकूल समयपर क्यों आती-जाती हैं? पवन अपनी गतिसे निरन्तर क्यों चलता है? समुद्र अपनी मर्यादामें क्यों रहते हैं? इन सबका एक ही उत्तर है, वह है प्राणिमात्रको सुख पहुँचानेके लिये प्रकृति ही सारा कार्य नियमबद्ध और सुचारुरूपसे कर रही है। इससे यह भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि प्रकृति सभीको सुखी रखनेके लिये नित्य अथक रूपसे प्रयत्नशील है। वह किसीको पीड़ित नहीं करना चाहती। इसलिये दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव करना, उन्हें कष्ट देना प्रकृतिके सहज कार्यमें बाधा डालना है। अतः दूसरोंको दुःख देनेवाला मनुष्य प्राकृतिक नियमानुसार दण्डका भागी है। हमारा प्रत्येक प्रकारका दुःख प्रकृतिकी ओरसे दण्ड पानेका प्रतीक है। ऐसी दशामें दूसरोंको पीड़ा पहुँचाना प्रकृतिके साथ झगड़ा मोल लेना है। इस झगड़ेमें मनुष्य कदापि विजयी न हो सकेगा। इसलिये जो दूसरोंको पीड़ा पहुँचाता है, दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव करता है, वह वस्तुतः अपने-आपके साथ दुर्व्यवहार करता है और वही अपना शत्रु कहलानेका अधिकारी है।

व्यावहारिक दृष्टिसे देखा जाय तो भी हमें दूसरोंसे उसी प्रकारका व्यवहार करना चाहिये, जो हम दूसरोंसे अपने प्रति चाहते हैं। क्या आप दूसरोंसे अपने प्रति अशिष्ट व्यवहार कराना पसंद करेंगे? नहीं; तो जो व्यवहार आप दूसरोंसे अपने प्रति नहीं चाहते, वही व्यवहार आपको दूसरोंके साथ करनेका क्या हक है?

जो व्यक्ति दूसरोंको कष्ट पहुँचाकर उनके न्याय-स्वार्थकी हानि करके केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, वह निरा बेसमझ है और वह अपना ही विनाश करनेपर तुला है।

आप अपने घरोंमें, मन्दिरोंमें, तीर्थस्थानोंमें, गिरजाघरोंमें और मस्जिदोंमें जाकर ईश्वर, अल्लाह अथवा गॉड (God) की पूजा-उपासना करते हैं, परंतु इससे भी बढ़कर पूजा-उपासना अपने-आपकी है। अपने-आपकी पूजा-उपासनासे तात्पर्य है—अपने-आपके साथ सद्व्यवहार करना। हम अपने साथ सद्व्यवहार तभी कर सकते हैं, जब हम दूसरोंकी भलाईमें अपनी भलाई देखें, दूसरोंके न्याय-स्वार्थका ध्यान रखते हुए अपना स्वार्थ सच्चे अर्थोंमें सिद्ध करें। दूसरोंके अधिकारका संरक्षण करें, दूसरोंकी न्याय्य आशाको पूर्ण करें। जो दूसरोंका बुरा नहीं करना चाहता, उसका बुरा किसी भी हालतमें नहीं हो सकता। इसलिये ऐसा व्यक्ति सुख-शान्तिमय जीवन व्यतीत करेगा; क्योंकि उसका शत्रु इस संसारमें कोई है ही नहीं। वह सबके प्रति मैत्रीभाव रखता है। अतः ऐसा ही व्यक्ति स्वयं अपना मित्र कहानेका अधिकारी है।

मनुष्यमें सबसे बड़ी शक्ति, विचारोंकी शक्ति है। इसके द्वारा मनुष्यने बड़े-बड़े आविष्कार किये हैं, किन्तु मनुष्य अपनी विचारशक्तिका सदुपयोग न करनेके कारण दीन-हीन और दुखी रहता है। दुर्विचारके कारण इन शक्तियोंका सदुपयोग नहीं हो पाता और उल्टा इनसे अपनी शक्तिका नाश हो जाता है। हमारी मानसिक शक्तियोंका सदुपयोग करनेपर जो शक्ति हमारा तथा दूसरोंका बड़ा भारी हित कर सकती है, वही दुरुपयोगसे अनेकों तरहके कष्टका कारण बन जाती है। हमारे विचारोंकी शक्ति महान् है। इसलिये हमें अपनी विचार-शक्तिका लाभ अवश्य उठाना चाहिये। अपनी विचार-शक्तिका सदुपयोग या दुरुपयोग स्वयं हमारी इच्छापर निर्भर है। हम अच्छी तरह जानते हैं कि दूसरोंके साथ भला व्यवहार करनेका फल भला और बुरा व्यवहार करनेका फल बुरा होता है। दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव करनेसे हमारे ही शरीर और मनको पीड़ित होना पड़ता है। इसलिये हम स्वयं ही हमारे मित्र और शत्रु हैं, दूसरा कोई भी मित्र या शत्रु नहीं है। अतएव आप ही सोच-समझकर निश्चय कर लीजिये कि आप अपने साथ सद्व्यवहार करेंगे या दुर्व्यवहार?

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आदर्श सद्व्यवहार

(क)

बात सन् १९५९ की है, तारीख मुझे ठीक याद नहीं रही। उस समय मैं अपने चाचाजी श्रीमिश्रीलालजी जोशी, पोन्नेरी-(जो मद्राससे २२ मीलकी दूरीपर है) वालोंकी दूकानपर काम करता था। मेरे चाचाजी मिश्रीलालजी जोशीके प्रिय मित्र और हमारे जाति-भाई श्रीरामचन्द्रजी बोहरा मद्रास-निवासीका आपसमें रकमका लेन-देन था। इन दोनों सज्जनोंके खुदकी गहने (Pawn Broker's) की दूकानें हैं, अतः इन्हें गहने पुनः बंधक (remortgage) रखकर साउथ इण्डियन बैंक, मद्राससे (South Indian Bank, Madras) से कर्ज (Loan) के तौरपर रकम लेनी पड़ती थी। भाई श्रीरामचन्द्रजी एक दिन चाचाजीको साथ लेकर बैंकको गये। उन्हें दस-बारह लोनोंको मिलाकर एक ही लोन बनाना था, साथ ही कुछ और गहना रखकर पाँच-छः हजार रुपये लेने थे। बैंककी लिखा-पढ़ीका सारा कार्य पूरा होते-होते शामके ४ बज गये। सुबहसे आये हुए थे, कुछ ऊब-से गये थे। अतः ये लोग जल्दीमें ही कैश चैकपर हस्ताक्षर करके रुपये बिना लिये ही बैंकसे चल दिये। रुपये लेनेका इन्हें बिल्कुल ख्याल ही नहीं रहा। शामके पाँच बजे बैंकके एजेण्ट श्रीकोळन्द स्वामी (Kozhand Swamy) ने हिसाब देखा तो रोकड़में पाँच हजार कुछ खुदरा रुपये ज्यादा थे। स्मरण करनेपर इन्हें भाई रामचन्द्रजीकी याद आयी जो चैकपर हस्ताक्षर करके बिना रुपये लिये ही चले गये थे।

एजेण्ट श्रीकोळन्द स्वामीने ५॥ बजेके करीब भाई साहबके पाँच हजार तथा कुछ खुदरे रुपये अपने लेदर बेगमें डाले और बैंक बंद उनके घरपर जानेके लिये टेक्सीपर सवार हो गये और शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये। चाचाजी और भाईसाहब इधर-उधर घूम-घामकर लगभग छः बजे अपने निवासस्थानपर कारसे उतरे। सामने एजेण्ट श्रीकोळन्द स्वामीको खड़े देख दोनों दंग रह गये। जब एजेण्ट महोदयने बेगसे निकालकर इनको रुपये दिये, तब इन्हें अपनी भूलका स्मरण आया। चाचाजी और भाई साहेब दोनों सड़ककी फुटपाथपर खड़े एजेण्ट साहेबकी ओर अपलक देखते ही रह गये। एजेण्ट साहब वापस जानेके लिये टेक्सीपर सवार हुए, तब भाई साहेबने कृतज्ञता प्रकट करते हुए, उन्हें कुछ देनेके लिये हाथ बढ़ाया। मगर उन्होंने उसकी तरफ देखे बिना ही 'मि० रामचन्द्र! यह मेरा कर्तव्य था' कहकर टेक्सी-ड्राइवरको चलनेका आदेश दिया। टेक्सी नजरोंसे ओझल होनेतक ये दोनों आत्म-विस्मृत-से वहीं खड़े रहे। महाशय कोळन्द स्वामी इस बैंकमें एक साधारण गुमाश्ताके तौरपर दाखिल हुए थे। उस समय इनका वेतन साठ रुपये था। अब आप हेड आफिसके एजेण्टके पदपर हैं। इनकी सज्जनता, कार्य-दक्षता एवं सत्यपरायणताने इनको शिखरपर पहुँचा दिया है। इनके मधुर व्यवहारके कारण हर ग्राहक इनकी सराहना किये बिना नहीं रह सकता।

(ख)

मेरे बहनोईजी श्रीशङ्करलालजी उपाध्यायके द्वारा सुनी हुई यह बात है; अतः उन्हींके शब्दोंमें लिख रहा हूँ।

करीब चार साल पूर्व मैं बम्बई ४६, प्रेमचन्द उम्मेदमल, लोकमान्य तिलकरोडपर स्थित कपड़ेकी दूकानपर था। वहाँ मैं १५ सालसे रहता आया हूँ। एक दिन दूकानपर ग्राहकोंकी भीड़ थी। रातके ८-८॥ बज चुके थे; फिर भी ग्राहकोंकी भीड़ होनेसे तीन-चार आदमी अलग-अलग ग्राहकोंको निपटाकर भेज रहे थे। इसी गड़बड़-

में गल्लेसे पैसे निकालते समय या पैसे डालते समय भूलसे किसीके द्वारा एक सौ रुपयेका नोट फूलोंकी टोकरीमें गिर गया। वह टोकरी एक (गरीब) फूल बेचनेवालेकी थी, जो दिनभर फूल बेचकर अपने पत्नी-बच्चोंका पालन करता था और रातको टोकरी हमारी दूकानमें रख जाया करता था। रातको १० बजे रोकड़ मिलाते समय सौ रुपये कम थे, सभी हैरान और दुखी थे। मैं सबसे ज्यादा दुखी थी; क्योंकि गल्लेकी और दूकानकी सारी जिम्मेवारी मुझपर थी। सभी लोग एक दूसरेपर संदेह भरी दृष्टिसे देख रहे थे। रातके १२ बजेतक सारी छान-बीन की गयी, मगर मैं रुपये नहीं ढूँढ़ सका। आखिर मैंने हैरान होकर सबके सामने यह कहा कि 'सुबह नीबूपर काजल लगाकर मन्त्रद्वारा चोरका पता लगानेवाले ओझा की सहायता लूँगा और सही चोरका पता लगाऊँगा। मैं कह रहा था पर मैं खुद काँप रहा था कि न मालूम क्या होगा। हालाँकि मैंने नोट नहीं लिया परंतु मेरी जिम्मेवारीमें हुई इस गलतीका मैं क्या जवाब दूँगा। मेरे सहज स्वच्छ और उज्ज्वल चरित्रपर धब्बा न लगने पाये—इसके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते हुए ही मैंने सबको सोनेके लिये कह दिया और मैं खुद भी सो गया भगवान्‌का स्मरण करते-करते!

सुबह फूलवाला आया। टोकरीमेंसे कपड़ा और पत्ते निकालते समय सौ रुपयेका एक नोट भी पत्तोंके साथ बाहर पड़ा देख वह काँपने लगा। उस नोटको उठाकर वह मेरे पास आया और मुझे नोट दिखाते हुए बोला कि 'शायद यह नोट आपका है, मेरी टोकरीमें था।' हमलोग सब सन्न रह गये। हमें टोकरीमें रुपये गिरनेका बिल्कुल ही ख्याल नहीं था। वह चाहता तो सौ रुपये दबा सकता था, परंतु वह ईमानदार था। मैंने उसे अपनी तरफसे पाँच रुपये देनेके लिये निकाले पर उसने नहीं लिये। सबलोग सजल नेत्रोंसे उसकी तरफ देखते ही रह गये और वह नीचे उतरकर वापस अपने काममें लग गया। अब वह हमारी दूकानकी पटरीपर नहीं है, फिर भी गल्ला खोलते ही-मुझे उसकी याद आकर मेरी आँखें बरबस जल बरसाने लगती हैं। धन्य है वह जिसने मुझपर और सबपर किये जानेवाले संदेह और कलंकसे हमें बचाया।

—बं० मिठालाल जोशी, पोन्नेरी, (जिला चैंगलपेट)

(२)

पञ्चामृतसे प्रेतको शान्ति

यह घटना अबसे तीन वर्ष पुरानी है। उन दिनों मैं अपने परिवारके साथ एक कस्बेमें रहता था। पिताजी-की वहीं सर्विस थी। एक दिन हमारे दूरके रिश्तेके एक सम्बन्धीके यहाँ श्रीसत्यनारायणकी कथा थी। वे निकटके एक छोटे गाँवमें रहते थे। हमको भी उन्होंने कथामें सम्मिलित होनेके लिये निमन्त्रण भेजा था और आनेके लिये बहुत आग्रह भी किया था। अतः मैं और पिताजी वहाँ गये। माताजी और छोटे बच्चे घरपर रहे; क्योंकि उन दिनों माताजीकी तबीयत कुछ खराब थी और गाँव थोड़ा दूर भी था। कथा समाप्त होनेपर मैं और पिताजी वापिस घर लौटनेके लिये चले। रात्रिके बारह बजेका समय हो गया था। हमारा गाँव दो मील दूर था। मैं, पिताजी और हमारे साथ एक महाशय और थे। हम तीनों रवाना हुए। साथमें घरवालोंके लिये पञ्चामृत और कथाका प्रसाद भी ले लिया। पूर्णमासीकी चाँदनी रात थी। आधे रास्तेपर एक विशाल वटका वृक्ष था। ज्यों ही हम इस वट-वृक्षके पास पहुँचे, त्यों ही वृक्षके ऊपरसे आवाज आयी, 'ठहरो'। आवाज सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। पिताजीने पूछा, 'आप कौन हैं और क्या चाहते हैं?' उत्तर मिला, 'मैं प्रेत हूँ, मुझे इस योनिमें कई वर्ष व्यतीत हो गये हैं। पूर्वजन्मके पापोंके कारण घोर यन्त्रणाका अनुभव करता हूँ, अगर आप कृपाकर पञ्चामृतका पात्र वृक्षके नीचे रख देंगे तो मैं उसे

ग्रहण करूँगा, इससे मुझे असीम शान्ति मिलेगी।' आवाज भर्रायी हुई थी। हमने पात्र वृक्षके नीचे रख दिया और दूर खड़े हो गये। थोड़ी देर बाद देखा कि उसमें पञ्चामृत गायब था। फिर प्रेतकी कोई आवाज नहीं आयी और एक शीतल वायुका झोंका आया। हम अपने गाँव लौट आये।

इससे विदित होता है कि पवित्र जलसे प्रेतात्मा-तकको बहुत शान्ति और सुख मिलता है।

—श्याममनोहर व्यास, बी०एस्-सी०

(३)

असीम नीचता और असीम साधुता !

लगभग बीस वर्ष पहलेकी बात है। एक सनातन-धर्मी सदाचारी पुराने विचारोंके घरकी लड़कीका विवाह भाग्यवश एक कालेजसे निकले मनचले अविवेकी बाबू लड़केसे हो गया। लड़की सुन्दरी थी, पढ़ी-लिखी भी थी, घरका सारा कामकाज करनेमें निपुण थी! सास-जेठानी—सबकी आज्ञा मानती, घरमें सबके साथ आदर-सम्मानका बर्ताव करती तथा सबको प्रसन्न रखती थी। प्राणपणसे स्वामीके संकेतके अनुसार चलना चाहती और चलती भी थी। परंतु उसमें (पतिके भावनानुसार) पाँच दोष थे—वह प्रतिदिन भगवान्‌के चित्रकी पूजा करती, मांस-अंडे नहीं खाती, परपुरुषोंका स्पर्श नहीं करती, बुरी-गंदी पुस्तकें नहीं पढ़ती और सिनेमामें नहीं जाती। ये पाँचों बातें वह अपने नैहरसे ही सीखकर आयी थी और उसके स्वभावगत हो गयी थीं। पति भी वैसे उसको बहुत मानता, पर यही पाँच बातें ऐसी थीं, जो पतिको बड़ी प्रिय थीं और वह बार-बार इनके लिये पत्नीको समझाता। वह पहले-पहले तो इन बातोंके दोष बतलाती, समझाना चाहती, पर इससे पतिदेवके क्रोधका पारा बहुत चढ़ जाता। वह समय-समयपर निर्दोष बालिकाको मार भी बैठता। गाली-गलौज बकना—उसके माँ-बापको बुरा-भला कहना, डाँटना-डपटना तो प्रायः रोज ही चलता था। इसलिये उसने समझाना तथा दोष बतलाना तो छोड़ दिया। वह जान गयी कि ये इन बातोंको अभी माननेवाले नहीं हैं। अतः वह विरोध न करके बड़ी नम्रतासे इन्हें माननेमें अपनी असमर्थता प्रकट करने लगी। बहुत कहा-सुनी होनेपर उसने पतिके साथ सिनेमामें जाना तो स्वीकार कर लिया परंतु शेष चार बातें नहीं मानी। उसने बड़े नम्र शब्दोंमें परंतु दृढ़ताके साथ कह दिया कि 'मेरे प्राण भले ही चले जायँ, मैं न तो भगवान्‌की पूजा छोड़ सकती हूँ और न मांस-अंडे खाना, पर-पुरुषोंको स्पर्श करना और गंदी पुस्तकें पढ़ना ही स्वीकार कर सकती हूँ।' इसपर उसके पतिदेवता बहुत ही नाराज हो गये; क्योंकि वह अपनेको आजकलके आगे बढ़े हुए लोगोंमेंसे मानता था। उसकी प्रगतिके क्षेत्रमें ये पत्नीकी चारों चीजें अनावश्यक थीं। अतः वह ऐसी पिछड़ी हुई स्त्रीसे अपने विवाह होनेमें बड़ा अभाग्य मानने लगा तथा उसके साथ बड़ा दुर्व्यवहार करने लगा।

कई वर्ष यों बीते। उसका द्वेष बढ़ता गया और उसमें घोर पापमूलक हिंसावृत्ति पैदा हो गयी। एक दिन दुपहरको किसी ट्रेनसे कहीं जानेका प्रोग्राम बना। पहले दर्जेकी दो टिकटें खरीदी गयीं। पत्नीको लेकर बाबू साहेब ट्रेनमें सवार हुए। उन दिनों भीड़ कम होती थी। पहले दर्जेके एक खाली डिब्बेमें पत्नीको लेकर वह बैठ गया।

कुछ दूर जानेपर जब गाड़ी वेगसे जा रही थी—उसने डिब्बेका फाटक खोला और किनारेकी सीटपर बैठी हुई पत्नीको धक्का देकर बाहर गिरा दिया। मनमें पहलेसे ही योजना बनायी हुई थी। इसीसे पत्नीको दरवाजेके पासकी सीटपर उसने बैठाया था। बेचारी अकस्मात् धक्का खाकर नीचे गिर पड़ी। भाग्यसे बगलके डिब्बेके एक सज्जन बाहरकी ओर सिर निकाले कुछ

देख रहे थे। उन्होंने एक तरुणी स्त्रीको गिरते देखकर जंजीर खींची; जंजीरमें कुछ जंग लगा था, इससे उसके पूरा खींचनेमें कुछ देर लग गयी। इतनेमें गाड़ी दो-तीन मील आगे बढ़ गयी।

गाड़ी रुकी। उस बाबूने सोचा था, मर गयी होगी। कह दिया जायगा—'खिड़की अकस्मात् खुल गयी, वह खिड़कीके सहारे किसी कामसे खड़ी थी, अकस्मात् गिर पड़ी।' पर गाड़ी रुकते ही अपने पापसे उसका हृदय काँप गया। आसपासके लोग इकट्ठे हो गये। गार्ड आया। उसने रोनी सूरत बनाकर सोची हुई बात गार्डसे कह दी। गाड़ी उलटी चलायी गयी। वहाँ पहुँचनेपर देखा गया—वह मरी तो नहीं है, पर चोट बहुत जोरसे लगी है। उसको जीती देखकर इसका बुरा हाल हो गया। सोचा, अब यह असली बात कह ही देगी और इससे लेनेके देने पड़ जायँगे। उसका शरीर काँपने लगा; आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बह निकली। लोगोंने समझा पत्नीके बुरी तरह घायल हो जानेके कारण यह रो रहा है। लोग उसे समझाने लगे। लड़कीको गाड़ीपर चढ़ाया गया। बड़े स्टेशन आनेपर उसे उतारकर अस्पताल पहुँचानेकी व्यवस्था की जाने लगी। पर उसे मरणासन्न देखकर पुलिसने मैजिस्ट्रेटको उसके आखिरी बयानके लिये बुला लिया। उसका पति तो अपने भविष्यकी दुर्दशाको सोचता हुआ अलग बैठा रो रहा था; समीप आनेकी भी उसकी हिम्मत नहीं थी। मैजिस्ट्रेटने आकर लड़कीका बयान लिया। उसने कहा—'साहेब! मुझे मिर्गीका पुराना रोग था, मैं लघुशंकाको गयी थी। लौटकर कुल्ला करने जा रही थी, इतनेमें मिर्गीका दौरा आ गया। फाटक खुला था, मैं बेहोशीमें नीचे गिर पड़ी और मुझे चोट लग गयी।' मैजिस्ट्रेटने घुमा-फिराकर पूछा—'तुम्हारे पतिने तो धक्का नहीं दिया न?' वह रोते-रोते बोली—'राम राम! वे बेचारे धक्का क्यों देते, वे तो इस समय बहुत दुखी होंगे। उन्हें बुलाइये, मैं उनके आखिरी दर्शन करके चरणोंमें प्रणाम कर लूँ।'

इसी बीच वह समीप आ गया था। वह यह सब सुनकर दंग रह गया और उसके हृदयमें एक महान् वेदना पैदा हो गयी। डरके बदले पश्चात्तापकी आग जल उठी। 'हाय! कहाँ तू महान् नीच, कहाँ यह परम साध्वी, जो इस मरणासन्न अवस्थामें भी सावधानीके साथ तुझ नीचको बचा रही है।' वह चीख उठा। लोगोंने उसको खींचकर समीप कर दिया। लड़कीने उसको देखा, चरण छुए और वह सदाके लिये चल बसी!

× × × ×

उस युवकके जीवनमें महान् परिवर्तन हो गया। वह इन सारे दुर्गुणोंको छोड़कर साधुस्वभाव हो गया। उसने इस पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये पुनः विवाह न करके ब्रह्मचारी जीवन बितानेका निश्चय किया। उसीने यह सब बातें लोगोंको बतायीं। छः महीने बाद ही वह लापता हो गया। इस समय पता नहीं, कहाँ है। किस अवस्थामें है—इस घटनासे बहुत कुछ सीखा-समझा जा सकता है।

—रामेश्वरप्रसाद सिंह

(४)

सेवा-परायणता

'मैं भी गाँवसे आया हूँ, तुमलोग भी गाँवसे आयी हो। तुम कुनबी हो, मैं सैंथवार हूँ।'

यों पहली मुलाकातमें ही इन माँ-बेटीके साथ उस सैंथवार युवककी आत्मीयताके चिह्न प्रकट होने लगे। माँ-बेटी दोनों ही काठियावाड़के एक गाँवसे कमाने-खानेके लिये अहमदाबाद आयी थीं। यहाँ दोनोंको मजदूरी मिलने लगी। एक घर भाड़े लेकर ये सुखसे अपने दिन बिताने लगीं। माँको अब सिर्फ एक ही चिन्ता थी अपनी जवान बेटीकी। यह लड़की छोटी उम्रमें ही विधवा

हो गयी थी। कोई संतान नहीं थी। इसी बीच तीसेक वर्षके उस जवान लड़केसे परिचय हो जानेपर माँने कहा—'भगवान्की दया हो गयी। जिसकी जरूरत थी, वह अपने-आप ही मिल गया।' इन लोगोंमें विधवा दूसरा घर कर सकती थी, यह प्रथा थी।

उस भाईकी भी यह धारणा हो गयी कि 'जो चाहिये था, वह मिल रहा है।' वह राशनिंगकी एक दूकानमें काम करता था। दूकानके मुख्य अधिकारीने भी इस दृष्टिसे समर्थन किया कि 'बेचारेका घर बँध जाय तो अच्छा है।'

असलमें यह भाई था उड़ाऊ; तभी तो गाँवकी जमीन तथा ढोरे-ढार बेचकर शहरमें आया था। ऐसे उड़ाऊको लड़की कहाँसे मिलती? इसीसे तीस वर्षकी उम्र तथा राशनिंगकी दूकानपर वेतन पानेवाला होनेपर भी उसे कोई लड़की नहीं मिली।

फिर तो, 'गाँवमें जमीन है, मेरा काका उसकी व्यवस्था करता है, मैं यहाँ सुखसे नौकरी करता हूँ।' उसकी इस प्रकारकी बातें सुनकर माँ-बेटीका मन इधर खिंच गया। राशनिंगकी दूकानवाला भी कहता—'यह बहुत अच्छा आदमी है।'

आखिर उसका सम्बन्ध उस लड़कीसे हो गया। पर सत्य कहाँतक छिपा रहता, उसकी सास तथा पत्नीको पक्का संदेह हो गया कि इसने झूठी डींग मारी थी। उन्होंने कहा, 'चलो अपने गाँव चलें।' वह चुप हो रहा और उसने अपने काकाको पहलेसे ही लिख दिया कि मैंने यह सब जंजाल रचा है, अब मेरी लाज बचाना तुम्हारे तथा गाँववालोंके हाथमें है।

परंतु गाँव जानेपर काकाने उसको घरसे बिदा कर दिया। इधर उस लड़कीकी माँ मर गयी। पर इससे वह लड़की घबरायी नहीं, उसकी हिम्मत बढ़ी और उसने अपने पतिसे कहा—'जरा भी चिन्ता मत करना।' दोनों गाँवमें रहे और मजदूरी करने लगे। लड़की घरका सारा काम चलाने लगी।

यों अहमदाबाद तथा पतिके गाँवपर लगभग डेढ़ वर्ष गृहस्थी चली। फिर पतिको बीमारीने घेर लिया। उसका सारा शरीर सूजकर खम्भा-सा हो गया। पर यह महान् स्त्री एक ओर मजदूरी करती रही और दूसरी ओर अखण्ड सेवामें लगी रही। गाँवके लोग इस बहिनके आचरण देखकर दाँतोंतले अंगुली दबाकर दंग रह गये। गाँववालोंने अन्न-वस्त्र स्वीकार करनेका अनुरोध किया। परंतु इस बहिनकी एक ही आवाज थी—'भगवान्ने मानव-शरीर दिया है। वह चल रहा है फिर क्या चिन्ता है। मेरा भगवान् बड़ा दयालु है; मुझे कभी मुफ्तमें लेनेका दिन न दिखावे।' यों मीठे वचन तथा आत्म-गौरवसे वह बहिन सबके हृदयपर विजय पाती रही।

सब मिलाकर दो ही वर्षका संग, और उसमें छः महीनेका यह विचित्र रोगका समय बिताकर उस भाईने सदाके लिये बिदा ले ली। उस बहिनने ऐसे पतिकी अर्धाङ्गिनी बनकर अन्ततक जो एकनिष्ठ महान् सेवा की, वह सर्वथा प्रशंसाके योग्य थी।

पतिके जानेके बाद संतानहीन होनेपर भी उस बहन-ने फिरसे घर करनेकी कल्पना ही मनमें नहीं आने दी। छोटेसे गाँवमें अकेली रहती हुई वह अपना सच्चरित्र तथा परिश्रमी जीवन आनन्दसे बिता रही है। 'अखण्ड आनन्द।'

—संत बाल

(५)

भगवान् जो करते हैं, सब मङ्गलके लिये करते हैं

उस समयतक मुझे अपनी योग्यता, कर्मठता और कार्यपटुताका घोर दम्भ था। अधीनस्थों तथा सहयोगियोंसे मैं यह भावना यदा-कदा व्यक्त करता रहता था। इस मनोदशामें यदि मेरी पदोन्नति होती तो मेरा अहंकार

और दर्प और बढ़ जाता । और हो सकता था मैं अपनी राहसे डिग जाता । परंतु भक्तवत्सल लीलाधारी प्रभुकी लीला अद्भुत और अपरम्पार है । जिस समय पदोन्नतिके लिये अन्य उम्मीदवारोंके साथ मेरा साक्षात्कार हुआ उस समय मैंने अपने मनमें अपनेको सर्वाधिक अनुभवी, सुयोग्य एवं निपुण समझा । मेरा अपना यह दृढ़ विश्वास था कि मैं अवश्यमेव पदोन्नति पाऊँगा । किंतु जब परिणाम निकला तो उसमें मेरा नाम नहीं था । काटो तो खून नहीं ! मैं बहुत ही निराश और मर्माहत हुआ । चतुर्दिक् मेरे इस पराभवकी चर्चा होने लगी, जिससे मुझे और ठेस लगती थी । मैंने अपने मनमें बहुत ही बुरा माना; किंतु प्रभुके छद्म-मङ्गल विधानको कौन परख सकता है । ऐसे अवसरपर करुणामय भगवान्‌के सिवा कहाँ सहारा मिल सकता था ? मुझमें स्वभावतः दीनता और ईशपरायणता शनैः-शनैः आने लगी । भगवद्भजन और सत्कार्यमें मेरी अभिरुचि बढ़ी । मैं अधिक सात्त्विकता और ईमानदारीसे काम करने लगा । करीब दस महीनेके बाद मैंने पहलेसे एक बड़े तथा ऊँचे ऐसे पदके लिये अन्यमनस्क तथा उदासीन भावसे आवेदन कर दिया जो पहलेके पदसे ऊँचा और अधिक प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण था । आवेदकोंकी संख्या हजारसे ऊपर थी तथा नियुक्तिकी संख्या केवल १२ ही । साक्षात्कार आदिके उपरान्त तनिक भी आशा नहीं थी कि मुझे वह पद मिल सकेगा । निर्वाचनका परिणाम निकला, जिसमें मेरा स्थान तीसरा आया । मेरी नियुक्ति हो गयी । मुझे आशातीत उच्चतर पद प्राप्त हुआ । मेरे लड़केका मैट्रिक परीक्षामें उसी तरहका उत्कृष्ट परिणाम आया । तबसे यह मालूम हो रहा है कि मैंने प्रभुकी अहैतुकी कृपाका प्रसाद पाया है । और भगवान् जो करते हैं मङ्गलके लिये ही करते हैं । मेरी पहली अग्निपरीक्षा न होती तो मैं आज इतना संयत और जाग्रत् नहीं हो पाता ।

—विश्वनाथसिंह एम्० ए०, साहित्यरत्न

(६)

धन पराव बिष तें बिष भारी

घटना उन दिनोंकी है जब स्वतन्त्रताके साथ ही देशके दो टुकड़े भी कर दिये गये । मैं उस समय एक राजकीय अधिकारीके रूपमें शिमलामें फागलीमें रहा करता था । हमारे ब्लॉकमें छः परिवार रहते थे, जिनमें एक मुस्लिम-परिवार भी था । देश-विभाजनकी घोषणा होते-न-होते जब जाति-विद्वेषकी ज्वाला भभक उठी तो इस मुस्लिम-परिवारको भी अपने प्राणरक्षार्थ राजकीय शिविरमें शरण लेनी पड़ी । ये केवल कुछ आभूषण ही साथ ले जा सके, शेष बहुमूल्य सामान घरमें ही बंद कर गये । उनके जाते ही घरकी बारहबाट आरम्भ हो गयी । मेरे एक परिचितने भी खूब चाँदी की । सौभाग्यवश मैं इस दुष्कार्यसे दूर ही रहा ।

एक दिन मेरे एक पंजाबी मित्र मेरे घर आये और मुझे एक बड़ा और सुन्दर लोटा देते हुए बोले कि यह लोटा उस मुस्लिम-परिवारका है और मुझसे अनुरोध करने लगे कि मैं इस लोटेको उक्त मुस्लिम-परिवारके पास पहुँचा दूँ । मैंने उन्हें ऐसा करनेका आश्वासन तो दे दिया, परंतु पहले तो उपद्रवोंके कारण और फिर बादमें दिल्लीको स्थानान्तरण हो जानेसे मैं लोटा उन्हें दे न सका । फिर मनमें आया कि अब तो वह मुस्लिम-परिवार पाकिस्तान पहुँच गया होगा, अब कौन उसे लोटा भेजे और अब इसका तकाजा ही कौन करेगा ?

दिल्ली आनेपर मुझे एक मित्रके घर रहना पड़ा । वहाँ कुछ ही दिनों पश्चात् वह लोटा भी चोरी हो गया और साथमें मेरा कुछ और सामान भी । मनमें तुरंत विचार आया कि भगवान्‌ने अनुचितरूपसे अर्जित वस्तु व्याजसहित वापिस ले ली है । इधर उन मेरे परिचित महोदयको भी, जिन्होंने लूटके मालसे अपना घर

भरा था, भारी हानि उठानी पड़ी। उन्होंने विदेश जाकर बहुत कमाया और वे उसे भारतस्थित अपने निकट सम्बन्धियोंको भेजते रहे। परंतु जब वापिस आये तो उन लोगोंने कुछ भी नहीं लौटाया। बेचारे अत्यन्त दुखी हुए।

एक और घटना भी मुझे स्मरण हो आयी। देश-विभाजनके समय ही एक मुसलमान अधिकारीने मुझसे सौ रुपये उधार लिये और मुझे इतनेका ही चैक दे दिया। चैक ले तो लिया, परंतु मुझे चैकपर विश्वास नहीं हुआ। मैंने एक अन्य मुसलमान क्लर्कसे कहा कि वह मुझे सौ रुपये दे दे और पाकिस्तान पहुँचकर उक्त अफसरसे ले ले। वह मान गया। चैक मैंने बैंकमें दे दिया था। तीन-चार वर्ष पश्चात् वह चैक भी स्वीकृत हो गया और मुझे बैंकसे भी रुपये मिल गये। मानव-स्वभाव! मैंने रुपये लौटानेका कोई प्रयत्न न किया। कुछ तो आलस्य और कुछ इसलिये कि रुपया एक पाकिस्तानीका था। तीन वर्ष पूर्व यात्रा करते हुए मेरा एक बक्स चोरी हो गया। बक्समें सौ रुपये नकद और कपड़े इत्यादि थे।

इन दो घटनाओंके पश्चात् मेरा यह अटल विश्वास हो गया है कि अनुचित रूपसे अर्जित धन अधिक दिनोंतक नहीं टिकता। ब्याजसहित वापस चला जाता है। आज भी मैं भगवान्‌को धन्यवाद देता हूँ कि मैंने अपने घरमें लूटका माल एकत्र नहीं किया। नहीं तो, न जाने मेरी क्या दुर्दशा होती। आशा है कि मेरे मित्र-बन्धु मेरे इन अनुभवोंसे लाभान्वित होंगे।

—राजकिशोर शर्मा

समाधान

(रचयिता—श्रीबालकिशनजी गर्ग)

एक दिवस अन्तस्‌में उत्कट उठा प्रश्न—"मैं कौन ?
एकमात्र जब ब्रह्म बताते विज्ञ संत अरु वेद !
फिर 'मैं-तू' व्यापक विवाद क्यों भवमें भारी भेद ?
क्यों इतना वैषम्य यहाँ प्रतिकूल खुशीसे खेद ?"
सोचा अति, नहिं समझ सकी मति, मुखपर छाया स्वेद !
सुनकर दुस्तर तर्क हो गये एक बार सब मौन !!

अभ्यन्तरमें हुआ निनादित नाद तभी गम्भीर—
"ओ मुमुक्षु ! है एक सभी कुछ, अनुभवसे पहिचान।
जलसे भिन्न तरंगोंका अस्तित्व नहीं, यह जान ॥
यथा नहीं है भिन्न स्वप्न, द्रष्टासे हो गतिमान।
वैसे ही सब जगत दृष्टिगत दुख-सुख ब्रह्म समान" ॥
समाधान जब हुआ, भ्रान्तिकी ध्वस्त हुई प्राचीर !

कल्याणके सुप्रसिद्ध चार विशेषाङ्क

एक साथ लेनेपर विशेष रियायत। चारोंका अलग-अलग मूल्य २९.०० है। एक साथ लेनेपर केवल २५.०० में, सजिल्दका ३०.००। डाकखर्च हमारा।

१—हिंदू-संस्कृति-अङ्क

पृष्ठ ९०४, लेखसंख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, डाकव्ययसहित मूल्य ६ रु० ५० नये पैसे। साथ ही इसी वर्षका अङ्क दूसरा तथा तीसरा बिना मूल्य।

इस अङ्कमें महान् हिंदू-संस्कृतिके प्रायः सभी विषयोंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें वेद, उपनिषद्, महाभारत, रामायण तथा श्रीमद्भागवतकी सानुवाद सूक्तियाँ, हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप तथा महत्त्व, हिंदूधर्म, वर्णाश्रम, दर्शन-परिचय, हिंदू-संस्कृतिकी व्यापकता, हिंदू-संस्कृतिमें त्याग और भोगका समन्वय, रामराज्यका स्वरूप, शिष्टाचार और सदाचार, आहार-विवेक, गोरक्षा, जीवरक्षा आदि विविध विषयोंपर बड़े-बड़े विद्वानों तथा अनुभवी पुरुषोंके लेख हैं।

इसके अतिरिक्त भगवान्के अवतारोंके, देवताओंके, आदर्श ऋषि-महर्षियोंके, परोपकारी भक्त, राजा तथा सत्पुरुषोंके, आचार्य, महात्मा और भक्तोंके एवं आदर्श हिंदू-नारियोंके बहुत-से पवित्र चरित्र हैं।

२—संतवाणी अङ्क

पृष्ठ-सं० ८००, तिरंगे चित्र २२, इकरंगे चित्र ४२, संतोंके सादे चित्र १४०, मूल्य डाकव्ययसहित ७ रु० ५० नये पैसे, सजिल्दका ८ रु० ७५ नये पैसे।

इस अङ्कमें संतोंकी पवित्र, जीवन-निर्माणमें सहायक, जीवनको उच्चस्तरपर पहुँचा देनेवाली निर्मल वाणियोंका अभूतपूर्व संकलन है, जो कुमार्गपर जाते हुए जीवनको वहाँसे हटाकर सच्चे सन्मार्गपर लानेके लिये परम सुहृद् बन्धु है। प्रबल मोह-सरिताके प्रवाहमें बहते हुए जीवोंके उद्धारके लिये सुखमय सुदृढ़ जहाज है। मानवतामें आयी हुई दानवताका दलन करके मानवको मानव ही नहीं, महामानव बना देनेके लिये दैवी शक्तिसम्पन्न संचालक और आचार्य है। जन्म-जन्मान्तरोंके संचित भीषण पाप-पादपोंसे पूर्ण महारण्यको तुरंत भस्म कर देनेके लिये उत्तरोत्तर बढ़नेवाला भीषण दावानल है। भगवान्की मधुरतम मुखछविका दर्शन करानेके लिये संत-वचन भगवान्के नित्य सङ्गी प्रेमी पार्षद हैं। इस प्रकार इस अङ्कमें ५८५ संतोंकी वाणियोंको अनेक गद्यों एवं पद्योंमें संग्रह किया गया है।

३—मानवता अङ्क

पृष्ठ-सं० ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर ३९ बहुरंगे, एक दुरंगा, १०१ एकरंगे और ३९ रेखाचित्र। डाकव्ययसहित मूल्य ७ रु० ५० नये पैसे, सजिल्द ८ रु० ७५ नये पैसे।

देशभरके चुने हुए महात्माओं और विद्वानों तथा विदेशी महानुभावोंके मानवतासम्बन्धी सद्विचारोंके संग्रहसे सम्पन्न और सबके द्वारा प्रशंसित।

एक सम्मति—

प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्रीगुलाबरायजी एम्० ए०—मानवता आजकलकी समाजकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। मानव और सब कुछ बन गया है, मानव ही नहीं बन सका है। इसलिये मानवता-अङ्क बहुत ही सामयिक निकला है। इसमें मानवताका साङ्गोपाङ्ग विवेचन हुआ है और यह बात प्रमाणित की गयी है कि मानवता धर्मकी अनिवार्य माँग है। इस अङ्कका धार्मिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टियोंसे महत्त्व है।

४—संक्षिप्त देवीभागवताङ्क

जनवरी १९६० का विशेषाङ्क, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द ८.७५। डाकखर्च हमारा।

इस विशेषाङ्ककी माँग इतनी अच्छी रही कि एक लाख पंद्रह हजार प्रतियोंका प्रथम संस्करण बहुत ही शीघ्र समाप्त हो गया और चालू वर्षके ग्राहकोंके लिये ही दस हजार प्रतियोंका दूसरा संस्करण तत्काल छापना पड़ा। थोड़ी प्रतियाँ शेष हैं, जिन्हें लेना हो शीघ्रता करनेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक—**कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

रजि० सं० ए० १७५

आँव (आमातिसार) की अनुभूत दवा

गताङ्क पृष्ठ १०८४ पर उपर्युक्त दवाका जो नुस्खा छपा है—उसके सम्बन्धमें उसके लेखक श्रीवर्माजी लिखते हैं— उसमें, जवापुष्प 'ऊपरका हरा छिलका छीलकर फेंक दें और एक फूल या अवस्थानुसार कम चबा जाय'—ऐसा छपा है। सो खिला हुआ फूल न चबाकर बिना खिली हुई जवा-पुष्पकी (मझले साइजकी न बहुत छोटी, न बहुत बड़ी) कली चार आनेभर मिश्रीके साथ खानी चाहिये। दिनमें दो बार दवा ली जाय तो और अच्छा है।

एक नयी पुस्तक

संस्कृति-माला भाग ७ (कक्षा ९ के लिये)

(लेखक—श्रीवसन्तलालजी शर्मा, एम्०-ए०, साहित्याचार्य)

आकार डबलक्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या १५२, सुन्दर दोरंगा मुख-पृष्ठ, आठ सादे चित्र, मूल्य .५५ नये पैसे। डाकखर्च अलग।

सम्मान्य कुलपति पद्मश्री पं० शुकदेवजी पाण्डेने विभिन्न कक्षाओंके विद्यार्थियोंके मानसिक धरातलके अनुरूप प्राचीन-भारतीय संस्कृतिका पाठ्यक्रम तैयार करनेके लिये बिरला-शिक्षण-संस्थाओंके विभिन्न विद्वानोंकी एक उपसमिति श्रीयुत डॉ० कन्हैयालालजी सहल एम्० ए०, पी-एच्० डी०की अध्यक्षतामें नियुक्त की थी। उसीके अनुसार तैयार की गयी यह नवम कक्षाकी पुस्तक है। इसमें सबसे पहले वेदोंकी दस शिक्षाप्रद कहानियाँ सरल भाषामें लिखी गयी हैं। उसके बाद पुराणों तथा छः दर्शनोंका परिचय संक्षेपमें सरल भाषामें लिखा गया है। तदनन्तर सदाचारकी कुछ आवश्यक ज्ञातव्य बातें स्मृतियोंसे संकलित कर सरल हिंदीमें लिखी गयी हैं।

कक्षा १० के लिये उपर्युक्त संस्कृति-मालाका भाग ८ छप रहा है।

कक्षा ३ से कक्षा ८ तकके छः भाग पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

संस्कृति-माला भाग १ (कक्षा ३ के लिये)

(ले०—श्रीमती प्रेमा सरीन् एम्० ए०)

पृष्ठ-सं० ४८, मूल्य .२० नये पैसे, डाकखर्च अलग। इसमें रामायण, महाभारत, श्रवणकुमार, प्रह्लाद, ध्रुव, सती-सावित्रीकी कहानियाँ और पालनीय नियम हैं।

संस्कृति-माला भाग २ (कक्षा ४ के लिये)

पृष्ठ सं० ५६, मूल्य .२५ नये पैसे, डाकखर्च अलग। इसमें सत्यकाम जाबाल, महाशाल शौनक और अङ्गिरा ऋषि, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी, नचिकेता, इन्द्र-विरोचन, श्रीकृष्ण, भक्त हनुमान्, भीष्मपितामह, युधिष्ठिर और एकलव्यकी कहानियाँ तथा पालनीय नियम हैं।

संस्कृति-माला भाग ३ (कक्षा ५ के लिये)

(लेखक—पं० श्रीरामकृष्णजी शर्मा)

पृष्ठ-सं० ८८, मूल्य .३० नये पैसे। डाकखर्च अलग। इसमें महर्षि वाल्मीकि, महर्षि व्यास, भगवान् परशुराम, महात्मा कबीर, गुरुनानकदेव आदिके १९ पाठ हैं।

संस्कृति-माला भाग ४ (कक्षा ६ के लिये)

पृष्ठ-सं० १०४, मूल्य .३५ नये पैसे। डाकखर्च अलग। इसमें २६ पाठ हैं।

संस्कृति-माला भाग ५ (कक्षा ७ के लिये)

(लेखक—पं० श्रीव्रजभूषणलालजी शर्मा)

पृष्ठ-सं० ९६, मूल्य .३५ नये पैसे, डाकखर्च अलग। इसमें जातककी कथाएँ, चाणक्य, कालिदास आदिके १७ पाठ हैं।

संस्कृति-माला भाग ६ (कक्षा ८ के लिये)

पृष्ठ-सं० १००, मूल्य .३५ नये पैसे। डाकखर्च अलग। इसमें १९ पाठ हैं।

आशा है कि इन सस्ती तथा उपयोगी पुस्तकोंसे शिक्षा-जगत्‌में लाभ उठाया जायगा।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**